गंगा-पुस्तकमाला का १९१वाँ पुष्प

दुलारे-दोहावली

प्रणेता
श्रीदुलारेलाल भार्गव

सखि, जीवन सतरंज सम,
सावधान ह्वै खेलि,
बस जय लहिबौ ध्यान धरि,
त्यागि सकल रँग-रेलि।

मिलने का पता—
गंगा ग्रंथागार
लखनऊ

पंचमावृत्ति

सजिल्द १॥)] सं० १९९२ [सादी १)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

भूमिका

१. काव्य-साहित्य और उसके अंग

साहित्य

जो हित के साथ-साथ वर्तमान है, वह हुआ सहित, और जिसमें सहित का भाव हो, वह हुआ साहित्य। इस प्रकार साहित्य वह है, जिसमें हितकारी भावों का वर्णन हो। सभ्य-संसार साहित्य के महत्त्व को भली भाँति जानता है। सच तो यह है कि किसी राष्ट्र अथवा जाति का उत्कर्ष वा अपकर्ष उसके साहित्य द्वारा ही विदित होता है। यद्यपि साहित्य का उपर्युक्त अर्थ सर्वमान्य है, पर यथार्थ में किसी जाति अथवा राष्ट्र के पास ग्रंथ-समूह का जो संग्रह उसके शताब्दियों से संचित ज्ञान एवं उसकी भावनाओं को दिखलानेवाला होता है, वही उसका साहित्य कहा जाता है। ऐतिहासिक ग्रंथों में साहित्य-शब्द का प्रयोग ऐसे ही अर्थ में किया जाता है। इसके सिवा काव्य के रीति-ग्रंथों को भी रूढ़ि से साहित्य-ग्रंथ कहते हैं।

साहित्य के भेद

स्थूल रूप से साहित्य के दो मूल विभाग हैं—(१) ज्ञान-प्रधान और (२) भाव-प्रधान। ज्ञान-प्रधान साहित्य के अंतर्गत दर्शन, इतिहास, भौतिक विज्ञान, गणित, ज्योतिष एवं अर्थ-शास्त्रादि की गणना है, जिसे विज्ञान कहते हैं। भाव-प्रधान साहित्य के अंतर्गत काव्य है। साहित्य के ये दोनो अंग भिन्न-भिन्न मार्गावलंबी होने से इनके कार्य-क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न हैं। वैज्ञानिक लोग विज्ञान द्वारा

ब्रह्मांड में जो श्रृंखला देखते हैं, उसका अनुभव कवि अनुभूति द्वारा करते हैं। उस श्रृंखला में जो विलक्षण आनंददायक सौंदर्य है, वही कवियों का वर्णनीय विषय होता है। यह यथार्थ है कि साहित्य की सृष्टि सत्य का रूप स्पष्ट करने के लिये है, और वैज्ञानिक एवं कवि सत्य की ही खोज में लगे रहते हैं, पर वैज्ञानिक सत्य से काव्य के सत्य में अनुभूति की विशेषता रहती है। इसी से विज्ञान से कविता पृथक् है। विज्ञान की भित्ति बुद्धि है, और कविता की भित्ति अनुभूति। विज्ञान का जन्म-स्थान मस्तिष्क है, और कविता की जन्मभूमि हृदय। विज्ञान में तर्क का साम्राज्य रहता है, और कविता में कल्पना का आधिपत्य। विज्ञान का उपादान बहिर्जगत् है, और कविता का कार्य-क्षेत्र अंतर्जगत्।

काव्य और सत्य

अधिकांश व्यक्तियों के लिये सत्य का रूप बाह्य प्रकृति तक ही परिमित रहता है। अंतःप्रकृति - अंतर्जगत्—की घटनाओं को तो वे तब समझें, जब पार्थिव जगत् के घात-प्रतिघातमय घटना-चक्रों के कठिन पाश से क्षण-भर के लिये ही मुक्ति प्राप्त करने का सौभाग्य पाने में समर्थ हो सकें। जो लोग थोड़ी देर के लिये बाह्य संसार से संबंध-विच्छेद कर अंतर्जगत् की ओर अंतर्दृष्टि से देखने में सक्षम होते हैं, वे ही—केवल वे ही—अंतर्जगत् की घटनाओं में सत्य की झाँकी देख पाते हैं। शेष मानव-समुदाय को अंतर्जगत् की घटनाओं में सत्य का स्वरूप देख लेना दुर्लभ है। शस्त्राघात से मनुष्य का मर जाना या लकड़ी की चोट से घायल हो जाना ऐसा सत्य है, जिसे सभी मान लेंगे; परंतु किसी अदृष्ट कारण से मनुष्य के भावना-सागर में तूफ़ान उठने और उससे उसके उत्थान और पतन में जो सत्य है, उसका दर्शन कर लेना सभी के लिये साध्य नहीं। वैज्ञानिकों के बाह्य प्रकृति-संबंधी आविष्कारों की सत्यता में किसी को संदेह नहीं हो सकता

परंतु कवि जब अपनी कल्पना द्वारा अंतर्जगत् का गूढ़ रहस्य समझाने लगता है, तब कुछ लोग संदिग्ध-चित्त हो सकते हैं। कवि-कल्पना के साथ सत्य के सामंजस्य का जो गूढ़ मेल रहता है, उसे सभी लोग नहीं देख पाते। यह सत्य है कि कवि मनोभावों को प्रत्यक्ष शब्द-चित्रों में चित्रित करने के लिये जिन काल्पनिक पात्रों को उपस्थित करता है, वे सत्य नहीं होते; परंतु उन काल्पनिक पात्रों का अंतर्जीवन सत्य होता है। यथार्थ में कवि सर्वकालीन सत्य की खोज करता है। वह मनोभावों की जिन काल्पनिक सजीव मूर्तियों के शब्द-चित्र खींचता है, उनकी सभी बातें ऐसी होती हैं, जो मनुष्य-मात्र पर घट सकती हैं, अतएव यह स्वीकार करना पड़ता है कि उनमें सत्य होता है। विज्ञान में प्राकृतिक अनंत सत्यों का दिग्दर्शन कराया जाता है, और साहित्य में मानसिक सत्य की अनुभूति का मनोरम निदर्शन। किंतु इसमें संदेह नहीं कि दोनो का लक्ष्य एक ही है, क्योंकि दोनो ही सृष्टि की शृंखला की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। फिर भी यह स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार विज्ञान प्रत्येक प्राकृतिक व्यापार का वर्णन करता है, उस प्रकार काव्य नहीं करता। जगत् में ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं, जो कुत्सित हैं। विज्ञान उनको चीर-फाड़कर दिखलाता है, पर कवित्व उन्हें छूता तक नहीं। कविता कला है, और कला कुत्सित का चित्रण नहीं करती। जो मधुर है, जो सुंदर है, और जो हृदय में सुखकर अनुभूति का संचार करता है, उसी का वर्णन करना कला का उद्देश्य रहता है। कभी-कभी तो काव्य वैज्ञानिक सत्य का उल्लंघन करके ही अपना स्वत्व स्थापित करता है। विज्ञान की दृष्टि से लू का चलना प्रकृति की एक क्रिया-विशेष है, जो समय-विशेष पर प्राकृतिक नियमानुसार होती है। पर कवि तो प्रत्येक विषय का, उसे आत्मानुभूति के साथ मिलाकर, विलक्षण ढंग से कल्पनामय करके, वर्णन करता है।

बिहारी लिखते हैं:—

"नाहिँ न ए पावक-प्रबल लुएँ चलतिँ चहुँ पास,
मानहुँ बिरह बसंत के ग्रीषम लेति उसास।" (बि० स०)

काव्य और आनंद

यथार्थ में प्रेम, करुणा, हर्ष, शोक, हास, अभिलाषा, लज्जा और क्रोध आदि ही सात्त्विक भावों की अवस्थाएँ हैं, जो जीव के हृदय में परंपरा से रहती हैं। इन भावों के प्रकाशन में ही काव्य का गौरव है। आत्मा से प्राणित जो कोषत्रयात्मक सूक्ष्म शरीर है, उसमें हम श्रेष्ठ काव्य के अनुशीलन द्वारा सद्भावों का संग्रह करने में समर्थ होते हैं। यद्यपि दर्शन, गणित, ज्योतिष एवं इतिहास आदि विज्ञान-मूलक साहित्य से ज्ञान प्राप्त कर हम ज्ञानी बन सकते हैं, पर आनंद की ओर काव्य ही ले जाता है। यह निर्विवाद है कि ज्ञान की अपेक्षा आनंद-जनक भाव प्रधान है, इसी से सभी ज्ञानी आनंद-प्राप्ति के हेतु प्रयत्न करते हैं। स्मरण रहे, विज्ञानमय कोष के भीतर ही, उससे परे आनंदमय कोष है। काव्य का प्रभाव उस पर सीधा पड़ता है। इसी से भाव-व्यंजक, आनंद-प्रद साहित्य अर्थात् काव्य को प्रधानता दी जाती है। तात्पर्य यह कि काव्य ही श्रेष्ठ और प्रधान साहित्य है।

काव्य स्वयं हेतु है। वह अन्य हेतुओं का साधन अवश्य है। और, इससे चरित्र-सुधार, धर्म-शिक्षा, परोपकार एवं जातीयता आदि के उपदेश-रूप अनेक आवश्यक कार्य साध्य हो जाते हैं, परंतु यहीं सीमा-बद्ध न होकर वह स्वयं मनोरंजक होता है। पाशविक प्रवृत्तियों से निश्चित होकर मनुष्य साहित्य-संगीत-कलावाली ऊपरी मंज़िल में पदार्पण करता है, और साथ ही यह अनुभव करता है कि यह आनंद पाशविक आनंद से परे एवं श्रेष्ठतर है, इसे बुद्धिजीवी मनुष्य ही भोग सकता है। यथार्थ में मनुष्य कहलाने का गौरव हमें तभी है,

जब हम इस आनंद का अनुभव कर सकें। आवश्यकता की अवस्था के पश्चात् साहित्य जब मनोरंजनवाली अवस्था में पहुँचता है, तब काव्य उसका अंग बन जाता है। अनेक विषय—जैसे नीति, राष्ट्रीयता, धर्मोपदेश आदि—कल्याण के लिये आवश्यक हैं, पर काव्य को इस प्रकार सीमाबद्ध करके उसका स्वत्व भ्रष्ट करना तथा उसके पवित्र उच्चासन से उसे पतित करना अनुचित है। काव्य को आवश्यकतावाद के संकीर्ण क्षेत्र में बाँधना मानो उसे संकीर्णता से दूषित कर पार्थिवकता से कलंकित करना है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि काव्य इन बातों के प्रतिकूल है, या इन विषयों पर काव्य-रचना न हो, किंतु यह कि काव्य को इतने में ही सीमाबद्ध करना अनुचित है। काव्य में विश्व-विमोहिनी बुद्धि का कौतूहल रहता है, जिसका संबंध हृदय से रहता है, और प्रायः मनोरंजन ही काव्य को अभिप्रेत है। पूर्वीय एवं पश्चिमीय, सभी साहित्यिक विवेचकों ने कविता का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन ही माना है। यहाँ विस्तार-भय से उनके मतों का उल्लेख करने में असमर्थ हूँ। आर्द-साहित्य में काव्यानंद को ब्रह्मानंद का सहोदर माना है।

काव्य की उपयोगिता

काव्य की उपयोगिता सृष्टि में व्यापक ब्रह्म के अनेक रूपों के साथ मनुष्य की जीवात्मा की अंतरंग रागात्मिका प्रकृति का सामंजस्य स्थापित करने में है। काव्य हमारे मनोभावों को उच्छ्वसित कर हमारे जीवन में एक नया जीवन डाल देता है। वह हमारे हृदय को विशाल बनाता है, जिससे हमें यह अनुभव होने लगता है कि सृष्टि की संपूर्ण वस्तुएँ हमारे ही आनंद से आनंदित हो रही हैं। पक्षी हमारे लिये ही राग अलापते हैं। सूर्य, चंद्र, ग्रह तथा नक्षत्र आदि हमारे हृदय की गति के अनुसार ही नाच रहे हैं। प्रकृति हमारे ही आनंद में आनंद और हमारे ही दुःख में दुःख प्रकट करती है। हमें जान पड़ता

है, यह शोभामय दृश्यमान जगत्, जिसके द्वारा हम अपने सौंदर्य के आदर्श को प्रत्यक्षीभूत कर रहे हैं, हमसे भिन्न नहीं। यदि हमसे इसका भिन्नत्व होता, तो फिर यह सागर अपनी लहरों से हमारी मन-नौका को चलायमान कैसे करता ? यथार्थ में तो मानव-जीवन के व्यापकत्व की अनुभूति उत्पन्न करके मनुष्य की मनोवृत्तियों का सृष्टि के साथ उचित सामंजस्य स्थापित करना ही काव्य की उपयोगिता है। जब मनुष्य के व्यापार का क्षेत्र जटिल होता जाता है, तब उसका हृदय भी स्वार्थपरायणता से संकुचित होता जाता और अशेष सृष्टि से उसके रागात्मक संबंध के विच्छेद होने की आशंका बढ़ती जाती है। ऐसी अवस्था में काव्य ही सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंध की रक्षा कर उसके विकास में सहायक होता है। अँगरेज़ी-भाषा के सुप्रसिद्ध विवेचक विद्वान् महाकवि शेली ने ठीक ही कहा है—

"Poetry preserves from decay the visitations of devinity in man."

अर्थात् "कविता मनुष्य में दिव्य भावों की प्रगतियों को निर्बल पड़ने से बचाती है।"

साथ ही विश्व-बंधुत्व के उदार भावों को व्यावहारिक स्वरूप देने की शक्ति केवल काव्य में ही होती है। विरोधी राष्ट्रों के प्रतिभाशाली कवियों के विचारों में जो समानता, भावों में जो एकता और स्फूर्तियों में जो समानता पाई जाती है, उससे भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के मनुष्यों के हृदय एक दूसरे के निकट पहुँचकर मिल जाते हैं। इस प्रकार कविता मनुष्य को यथार्थ मनुष्यता से युक्त करती है। काव्य से क्या लाभ है, इसके विषय में वाग्देवतावतार श्रीमम्मटाचार्यजी लिखते हैं—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ;
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।

(काव्यप्रकाश)

अर्थात् – "काव्य यश, द्रव्य-लाभ, व्यवहार-ज्ञान, दुःख-नाश, शीघ्र परमानंद और कांता के समान मधुरता-युक्त उपदेश के लिये है।"

केवल यही नहीं, अपितु काव्य धर्म, अर्थ और काम के अतिरिक्त मोक्ष-प्राप्ति का भी हेतु है। इसके विषय में महापात्र कविराज विश्वनाथजी ने ठीक ही कहा है—

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च;
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्।
(साहित्यदर्पण)

साहित्य-शास्त्र और काव्य

हम इस सृष्टि की प्रत्येक बात में एक विलक्षण श्रृंखला पाते हैं। प्रकृति की प्रत्येक बात में सुश्रृंखलता है, उच्छृंखलता कहीं भी नहीं। उत्पत्ति, जीवन और मरण में नियम है, वनस्पतियों में नियम है, जड़ और चेतन सबमें नियम है। अनियम कहीं भी नहीं। कला में भी नियम है। संगीत में नियम है, चित्र-कला में नियम है, और नियम-बद्ध होने ही से उनकी विशुद्ध शोभा और उनका उत्कर्ष है। कविता भी कला है, और इसमें भी नियम है। अनेक सज्जन आज धृष्टता करके कहने लगे हैं कि कवि तो निरंकुश रहते हैं, उन्हें नियम का बंधन नहीं चाहिए। इसके विषय में सुप्रसिद्ध कविश्रेष्ठ स्वर्गीय द्विजेंद्र-लाल राय ने अपने 'कालिदास और भवभूति'-नामक आलोचनात्मक ग्रंथ में लिखा है—"गान की ताल, नृत्य की भाव-भंगी, कविता के छंद और सेना की चाल इत्यादि सभी बड़ी वस्तुओं के कुछ बँधे हुए नियम होते हैं। यह बात नहीं कि निरंकुश होने के कारण कवि लोग नियम के शासन को मानने के लिये सर्वथा बाध्य न होते हों। नियम होने के कारण ही काव्य और नाटक सुकुमार कला हैं। नियम-बद्ध होने के कारण ही काव्य में इतना सौंदर्य है।" (पृष्ठ 16)

तात्पर्य यह कि प्रत्येक कला के कुछ स्थायी नियम होते हैं। फिर

देश-काल-पात्र के भेद से इन नियमों में कुछ अंतर भी होता है। भारतीय आर्य-साहित्य में काव्य-कला पर सहस्रों की संख्या में रीति-ग्रंथ हैं, जो बड़े ही रहस्यमय और वैज्ञानिक सत्यों से परिपूर्ण हैं। इस शास्त्र को, जिसमें काव्य-कला के नियमों तथा स्वरूप की मीमांसा की गई है, साहित्य-शास्त्र या अलंकार-शास्त्र कहते हैं। इसमें बड़ी ही उत्कृष्ट विवेचना है, जिसे समझकर पढ़ने से बुद्धि में बल आता है, और जिससे कला का आदर्श प्रत्यक्षीभूत होता है। ध्यान रहे, साहित्य-शास्त्र काव्य-कला का वैज्ञानिक विश्लेषण करनेवाला होने से काव्य का संयोजक, नियामक और हितकारक है, एवं साहित्य-शास्त्र की कसौटी पर काव्य परखा जाता है।

रस

साहित्य-शास्त्र का प्रधानतया प्रतिपाद्य विषय रस है, एवं छंद, अलंकार तथा गुण आदि को रस के अंग बनाकर इनका निरूपण किया गया है। हमारे सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक साहित्य-शास्त्र ने रस ही को काव्य की आत्मा एवं अलंकारादि को इस रस-अंगी का अंग माना है। महाभारत-काल के पूर्व—आज से लगभग ५५०० वर्ष पूर्व —के आद्य साहित्याचार्य भगवान् भरत मुनि से लेकर मुग़ल-सम्राट् शाहजहाँ के राजत्व-काल के माननीय साहित्याचार्य पंडितराज जगन्नाथ 'त्रिशूली' तक के सैकड़ों धुरंधर साहित्याचार्यों ने संस्कृत में एवं श्रीकेशवदासजी से लेकर आज तक के सैकड़ों साहित्याचार्यों ने हिंदी में रस को काव्य की आत्मा बतलाते हुए बड़े समारोह से रस का निरूपण किया है। इन महानुभावों का मत है कि रस ब्रह्मानंद का सहोदर है। यह ब्रह्मवत् अखंड, चित्स्वरूप तथा लोकोत्तर आनंददायी है। जिस प्रकार 'अयमात्मा ब्रह्म,' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' तथा 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कदाचन' आदि श्रुतियाँ ब्रह्म का निरूपण करती हैं, उसी प्रकार 'रसो वै सः' वा 'रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति' आदि श्रुतियाँ रस का निरूपण

करती हैं, एवं जिस प्रकार ब्रह्म स्वानुभव संवेद्य है, उसी प्रकार रस भी स्वानुभव संवेद्य है। इनमें अंतर इतना ही है कि ब्रह्म निर्विषय वस्तु है, और रस सविषय। ब्रह्म योगिगम्य है, और रस सहृदयगम्य।

कवि अपने काव्य में जिन-जिन मनोविकारों या मनोभावों का वर्णन करता है, उन-उन मनोविकारों के कारण, कार्य और उनके सहकारी अपर मनोविकार का उस काव्य में यदि पूर्ण और यथायोग्य उद्भावन करता है, तो ऐसे काव्य के पढ़ने या सुनने से लोगों के अंतःकरण में भी वे ही मनोविकार जाग्रत् होते हैं, और स्पष्ट जान पड़ने लगता है कि वे लोग उनका प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। इस प्रकार का भास होने से उस समय जो विलक्षण आनंद होता है, उसे ही रस कहते हैं। नाट्यशास्त्र में भगवान् भरत मुनि कहते हैं—"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" अर्थात् विभाव, अनुभाव और संचारी भाव का (स्थायी भाव से) संयोग होने पर रस की निष्पत्ति होती है। श्रीभट्ट लोल्लट ने इसी सूत्र का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—

"स्थायिनां विभावेनोत्पाद्योत्पादकभावरूपादनुभावेन गम्यगम्यकभावरूपाद्व्यभिचारिणा पोष्यपोषकभावरूपात्सम्बन्धाद्रसस्य निष्पत्तिरभिव्यक्तिः पुष्टिश्चेत्यर्थः।"

अर्थात्, स्थायी भाव का विभाव से उत्पाद्य और उत्पादक, अनुभाव से बोध्य और बोधक एवं संचारी भाव से पोष्य और पोषक संबंध होने से रस की उत्पत्ति, अभिव्यक्ति और पुष्टि होती है। निष्कर्ष यह कि प्रधान मनोविकार को स्थायी भाव, उसके कारण को विभाव, उसके कार्य को अनुभाव और उसके सहकारी अपर मनोविकार को व्यभिचारी भाव कहते हैं। विभाव दो प्रकार का होता है—(१) आलंबन और (२) उद्दीपन। जिसका आलंबन करके स्थायी भाव की उत्पत्ति हो, उसे आलंबन विभाव और जिससे स्थायी भाव उद्दीप्त हो, उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। अनुभाव भी (१) मानसिक,

(२) कायिक और (३) सात्त्विक भेद से तीन प्रकार के होते हैं। सात्त्विक भाव यद्यपि अनुभाव ही हैं, पर इनकी गणना अनुभावों से पृथक् भावों में की जाती है। इसका कारण यह है कि रस का प्रकाशक अंतःकरण का विशेष धर्म 'सत्त्व' है। माननीय आचार्य विद्यानाथजी ने लिखा है—

"परगतसुखादिभावनया भावितान्तःकरणत्वं सत्त्वम्।"

(प्रतापरुद्रीय)

परगत अर्थात् दूसरे में रहते हुए भावों के ध्यान से वासना-युक्त किए हुए अंतःकरण को सत्त्व कहते हैं। उक्त सत्त्व के अनुभावों को सात्त्विक कहते हैं।

आद्याचार्य भगवान् भरत मुनि ने 'नाट्य-शास्त्र' में मानव के मन में उठनेवाले संपूर्ण मनोविकारों की संख्या ४६ निर्देश की है। हमारे आर्य-साहित्य के अन्यान्य महामति आचार्यों ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके बहुमत से भावों की कुल संख्या ४६ ही सिद्ध की है, एवं अन्यान्य मनोविकार-रूप भावों को इन्हीं के अंतर्गत बतलाया है। 'अपि सूक्ष्मतया भेदाः कविभिर्न प्रदर्शिताः' के नियमानुसार सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों में विभाजित कर साहित्य-शास्त्र को जटिल बनाना उन्हें अभीष्ट न था, और फिर शास्त्र के नियमानुसार तो 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' अर्थात् प्रधानता के कारण ही नाम निर्देश होता है। भगवान् भरत मुनि के मत से ८ स्थायी + ८ सात्त्विक + ३३ संचारी = ४६ भाव होते हैं। मैं लिख आया हूँ कि स्थायी भाव की ज़मीन पर ही रस की इमारत खड़ी होती है, एवं वही विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से पुष्ट हो रस बन जाता है। इससे जितने स्थायी भाव होंगे, उतने ही रस होंगे। नाट्य-शास्त्र में शांत रस न मानने के कारण भगवान् भरत मुनि ने ८ स्थायी भाव माने हैं। परंतु वाग्देवतावतार श्रीमम्मटाचार्यजी ने बहुत सोच-

समझकर काव्य में शांत-नामक नवम रस और निर्वेद-नामक स्थायी भाव माना है। लिखा है—

"निर्वेदः स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।" (काव्यप्रकाश)

इनके निर्वेद स्थायी भाव एवं शांत रस मानने से भी भगवान् भरत मुनि के मत का खंडन नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें भी सब मिलाकर ४९ भाव ही रहते हैं।

इस प्रकार रसों की संख्या ९ है—(१) शृंगार, (२) हास्य, (३) करुण, (४) रौद्र, (५) भयानक, (६) वीर, (७) बीभत्स, (८) अद्भुत और (९) शांत।

इनके स्थायी भाव क्रम से (१) रति, (२) हास, (३) शोक, (४) क्रोध, (५) भय, (६) उत्साह, (७) जुगुप्सा (ग्लानि), (८) विस्मय और (९) निर्वेद हैं।

आठ सात्त्विक भावों में (१) स्तंभ, (२) स्वेद, (३) रोमांच, (४) स्वरभंग, (५) कंप, (६) अश्रु, (७) वैवर्ण्य और (८) प्रलय है।

तेंतीस संचारी भावों में (१) निर्वेद, (२) ग्लानि, (३) शंका, (४) असूया, (५) श्रम, (६) मद, (७) धृति, (८) आलस्य, (९) विषाद, (१०) मति, (११) चिंता, (१२) मोह, (१३) स्वप्न, (१४) विबोध, (१५) स्मृति, (१६) अमर्ष, (१७) गर्व, (१८) उत्सुकता, (१९) अवहित्थ, (२०) दीनता, (२१) हर्ष, (२२) व्रीड़ा, (२३) उग्रता, (२४) निद्रा, (२५) व्याधि, (२६) मरण, (२७) अपस्मार, (२८) आवेग, (२९) त्रास, (३०) उन्माद, (३१) जड़ता, (३२) चपलता और (३३) वितर्क हैं।

रसराज शृंगार

संपूर्ण रसों में शृंगार रसराज है। यही मानव-जगत् का आदि रस

है, और इसी के द्वारा मनुष्य-जाति ने जीवन प्राप्त किया है, अपनी परंपरा रक्खी है, और उदार-हृदय होकर इसी के विशुद्ध प्रेम से संसार के भक्तों और दार्शनिकों ने परमात्मा के प्रति जीवात्मा के प्रेम का परिचय प्राप्त किया है। इसी से संपूर्ण विश्व के प्रसिद्ध महाकवियों की रचनाओं में शृंगार-रस के सुंदर वर्णन प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि कविता कला है, और भाव-धारा-प्रधान साहित्य के अंतर्गत है। प्रत्येक कला का उद्देश्य सौंदर्य के आदर्श को प्रत्यक्षीभूत करना होता है। इस दृष्टि से काव्य में सौंदर्य का वर्णन रहता है। शृंगार ही एक ऐसा रस है, जिसमें बाह्य और अंतरंग प्रकृति के सर्वोत्कृष्ट सौंदर्य का वर्णन रहता है। इसी से भगवान् भरत मुनि ने आदेश किया है—

"यत्किञ्चिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं
दर्शनीयं वा तत्सर्वं शृंगारेणोपमीयते।"

इसके सिवा भाव-धारा-प्रधान साहित्य में प्रेम के समान अन्य कोई भी ऐसा श्रेष्ठ स्थायी भाव नहीं है, जिसमें संपूर्ण स्वार्थ-निलय और द्वैतभावशून्यता का चमत्कार हो। अनुभावों के अंतर्गत भी हावों का वर्णन केवल शृंगार में ही होता है, और सात्त्विक भावों का भी जैसा उत्कर्ष शृंगार में होता है, वैसा अन्य रसों में सर्वथा दुर्लभ है। फिर शृंगार-रस में आश्रय और आलंबन का भी वास्तविक भेद नहीं रहता। इसमें, केवल इसी में, स्थायी भाव आलंबन की अनुभूति का विषय होता है। अन्य रसों में आश्रय और आलंबन, दोनो स्थायी भाव की अनुभूति करते हुए स्वप्न में भी नहीं देखे जाते। दोनो में एकप्राणता का यह भाव सर्वथा दुर्लभ ही है। उद्दीपन भाव की दृष्टि से भी शृंगार सर्वश्रेष्ठ है। अन्य रसों के उद्दीपन केवल मानुषी हैं, पर शृंगार-रस के उद्दीपन मानुषी और दैवी, दोनो होते हैं। संचारी भावों की दृष्टि से भी शृंगार सर्वश्रेष्ठ रस है, क्योंकि शृंगार के स्थायी भाव रति

के साथ प्रायः संपूर्ण संचारियों का वर्णन होता है। यही क्यों, शृंगार का अंग बनाकर दूसरे रसों का वर्णन भी किया जाता है। इस प्रकार यह निर्विवाद है कि इस रस की समता का कोई रस नहीं, एवं यही आदि रस और रस-राज है। शृंगार-रस की इसी व्यापकता के कारण साहित्याचार्यों को रस-निरूपण करने में, साहित्य-ग्रंथों में रस-योजना को पूर्णतया स्पष्ट रीति से समझाने में शृंगार का ही आश्रय लेना पड़ा है। रस-विषयक प्रत्येक ग्रंथ में शृंगार-रस का सविस्तर और पूर्ण वर्णन मिलता एवं अन्यान्य रसों का वर्णन अत्यंत संक्षेप में प्राप्त होता है। रस-पूर्ण मुक्तक-लेखक कवीश्वरों ने तो शृंगार को सदैव महत्त्व दिया है। इसका कारण यह भी है कि रस की आद्यंत संपूर्ण योजना की अभिव्यक्ति शृंगार-रस के अतिरिक्त और किसी रस में नहीं होती। इस रस के आलंबन नायिका और नायक के भेद-प्रभेदों से रीति-ग्रंथ भरे पड़े हैं। तात्पर्य यह कि रसराज शृंगार के भेद-प्रभेदों आदि का जैसा विस्तृत वर्णन रीति-ग्रंथों में प्राप्त होता है, उसका शतांश भी अन्य किसी रस का नहीं। प्रस्तुत ग्रंथ में भी शृंगार-वर्णन का बाहुल्य है।

काव्यार्थ

रस शब्दों द्वारा प्रकट होता है, अतएव यहाँ शब्द और उसके अर्थ पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। व्यापक अर्थ में जो कान से सुनाई दे, उसे शब्द कहते हैं। शब्द के सुनने से उससे जो कुछ समझा जाता है, उसे शब्द का अर्थ कहते हैं। तात्पर्य यह कि प्रत्येक शब्द अर्थ-बोधक होता है। शब्द दो प्रकार के हैं—पहले में केवल सांकेतिक शब्द हैं, जैसे—'अँसुआ परि छतियाँ छिनकु छनछनांय छिपि जायँ।' इस उदाहरण में 'छनछनाय' एक सांकेतिक, अर्थबोधक शब्द है। इसके स्थान में दूसरे किसी शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता। ऐसे शब्दों के पर्यायवाची शब्द भाषा में

प्रायः होते ही नहीं। दूसरे प्रकार के शब्द ध्वनि-अनुकरण के संकेत को बतलानेवाले नहीं होते। इनके स्थान में अन्यान्य पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे—'छिपि जायँ' को हम 'दुरि जायँ', 'लुप्त हो जायँ', 'अंतर्द्धान हो जायँ', 'अप्रकट हो जायँ' आदि के प्रयोग द्वारा सहज ही प्रकट कर सकते हैं, पर 'छनछनाय' का सदा-सर्वदा एक ही निश्चित, नियत अर्थ रहेगा।

अर्थ-भेद में वाच्यार्थ

शब्द तीन प्रकार के होते हैं—(१) वाचक, (२) लक्षक और (३) व्यंजक। इनकी उन शक्तियों को, जिनसे ये जाने जाते हैं, क्रम से (१) अभिधा, (२) लक्षणा और (३) व्यंजना कहते हैं। इनके अर्थ भी तीन प्रकार के होते हैं—(१) वाच्यार्थ, (२) लक्ष्यार्थ और (३) व्यंग्यार्थ। जो शब्द परंपरा-मूलक सांकेतिक अर्थ को प्रकट करे, उसे वाचक और उसके अर्थ को वाच्यार्थ कहते हैं। साहित्यदर्पणकार कविराज विश्वनाथजी का मत है—

तत्र सांकेतिकार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा। (सा० अ० ६, पृ०२८)

अर्थात् "वहाँ सांकेतिक अर्थ के बोध के कारण प्रथम अर्थात् अभिधा है।"

इनके इस मत से वाचक शब्द सांकेतिक अर्थ प्रकट करता है। संकेत और अभिधा पर्यायवाची शब्द हैं। न्याय-शास्त्र में शक्ति के विषय में कहा है—

अस्मात्पदादयमर्थो बोधव्य इतीश्वरसंकेतः शक्तिः।

अर्थात् "इस पद से यह अर्थ जानना चाहिए, ऐसा जो ईश्वर का किया हुआ संकेत है, वह शक्ति है।"

वाच्यार्थ के मुख्यार्थ, नामार्थ और अभिधेयार्थ आदि पर्यायवाची शब्द हैं। अभिधा के इस संकेत का ग्रहण चार प्रकार से होता है—(१) जाति के नाम से, (२) स्वतंत्र नाम से, (३) धर्मी के

गुण अर्थात् रंग, रूप, रस तथा गंध आदि के नाम से और (४) क्रिया के नाम से। इनके उदाहरण में आचार्य भिखारीदासजी ने एक दोहा लिखा है —

जाति-नाम यदुनाथ गुनि, कान्ह यदृच्छा धारि,
गुन ते कहिए श्याम अरु क्रिया-नाम कंसारि।
(काव्यनिर्णय, पृष्ठ ४)

यादव-जाति में होने के कारण श्रीकृष्ण का नाम यदुनाथ है, कान्ह स्वतंत्र नाम है, श्याम गुण-नाम है, क्योंकि श्रीकृष्ण श्यामवर्ण के हैं, और कंसारि क्रिया-नाम है, क्योंकि श्रीकृष्ण ने कंस से शत्रुता करके उसका वध किया था।

लक्ष्यार्थ

लक्षणा-शक्ति शब्द के मुख्यार्थ से भिन्न, परंतु उसके निकटवर्ती अन्य अर्थ को प्रकट करती है। लक्षणा के दो भेद हैं—(१) रूढ़ि और (२) प्रयोजनवती। जिसमें मुख्यार्थ का बाध हो, पर जिसकी लोक में प्रसिद्धि हो उसे रूढ़ि लक्षणा कहते हैं। 'फलीं सकल मन-कामना', इसमें मन-कामना फल देनेवाले लता-वृक्षों में से नहीं, जो फलें। पर यह कथन लोक में अत्यंत प्रसिद्ध है, और इससे 'मन-कामना पूर्ण हुई' यह अर्थ लिया जाता है, जो रूढ़ि से माना गया है। जब मुख्यार्थ से वक्ता का अभिप्राय न निकलता हो, तब उस अभिप्राय को समझने के लिये रूढ़ि के कारण अथवा किसी ख़ास प्रयोजन से कोई दूसरा ऐसा अर्थ लिया जाय, जिसका मुख्य अर्थ से संबंध हो, तब उसे प्रयोजनवती लक्षणा कहते हैं। जैसे —'चोर दरवाज़ा तोड़कर भीतर गया।' इसमें किवाड़ों का तोड़ा जाना संभव है, सो किवाड़ तोड़ना न कहकर दरवाज़ा तोड़ना कहा। पर यहाँ दरवाज़ा तोड़ने से किवाड़ तोड़ने का प्रयोजन निकलता है, जिससे भीतर जाने का अर्थ लिया जाता है; इससे यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा

है। इसके दो भेद हैं—(१) शुद्धा और (२) गौणी। शुद्धा लक्षणा के भी चार भेद हैं—(१) उपादान लक्षणा, (२) लक्षण लक्षणा, (३) सारोपा लक्षणा और (४) साध्यवसाना लक्षणा। गौणी लक्षणा के भी दो भेद हैं—(१) गौणी सारोपा और (२) गौणी साध्यवसाना। अनेक आचार्यों ने (१) गूढ़व्यंग्या और (२) अगूढ़व्यंग्या-नामक दो प्रकार की लक्षणा और मानी हैं।

व्यंग्यार्थ

वाच्यार्थ वा लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी अन्य प्रतीयमान अर्थ का बोधक शब्द व्यंजक है। इस व्यंजक-शब्द से इष्टार्थ का बोध करानेवाली शक्ति को व्यंजना-शक्ति कहते हैं। जैसे 'मुक्ताओं से चौक पुराए।' इससे मुख्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ का बाध होने पर श्रीसंपन्नता और ऐश्वर्य व्यंजित होते हैं। व्यंजना से जाने हुए अर्थ को व्यंग्यार्थ, ध्वन्यार्थ, आक्षेपार्थ और प्रतीयमानार्थ कहते हैं। न्याय-शास्त्र में अभिधा और लक्षणा दो ही वृत्ति मानते हैं। व्यंजना-वृत्ति तो साहित्य या काव्य-शास्त्र ही में मानी गई है। इसी से व्यंग्यार्थ को वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से पृथक् दिखलाते हुए ध्वनिकार लिखते हैं—

> प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्;
> यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।

व्यंग्य दो प्रकार का है—(१) प्रधान और (२) अप्रधान। जहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार हो, वहाँ प्रधान व्यंग्य होता है, और जहाँ व्यंग्यार्थ में वाच्यार्थ से अधिक चमत्कार न होकर उससे सम या न्यून चमत्कार हो, वहाँ अप्रधान व्यंग्य होता है। अप्रधान व्यंग्य को गुणीभूत व्यंग्य भी कहते हैं। प्रधान व्यंग्य के भी (१) शाब्दी और (२) आर्थी-नामक दो भेद हैं, जिनके अन्य अनेक उप-भेद हैं। अप्रधान या गुणीभूत व्यंग्य के भी अनेक

भेदोपभेद हैं। इनका उत्तम, सविस्तर वर्णन सुप्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार के गंगा-पुस्तकमाला द्वारा प्रकाशित 'काव्य-कल्पद्रुम' में हिंदी-प्रेमियों को प्राप्त होगा।

व्यंग्यार्थ और ध्वनि

स्मरण रहे, व्यंग्य ध्वनित होता है। इसी से जहाँ व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है, वहाँ ध्वनि रहती है। व्यंग्यार्थ की प्रतीति करानेवाली वृत्ति को भगवान् वेदव्यासजी आक्षेप-रूप अथवा ध्वनि-रूप मानते हैं। लिखते हैं—

श्रुतेरलभ्यमानोऽर्थो यस्माद्भाति सचेतनः ;
स आक्षेपो ध्वनिः स्याच्च ध्वनिना व्यज्यते यतः।

(अग्निपुराण)

अर्थात् "श्रवण-मात्र से अलभ्यमान अर्थात् अभिधा और लक्षणा से नहीं जाना हुआ अर्थ जिससे सचेतन अर्थात् प्रकाशमान होकर भाति अर्थात् भासता है, वह आक्षेप है, और ध्वनि द्वारा प्रकाशित होता है, इससे वह 'ध्वनि' भी है।"

श्रीमम्मटाचार्यजी प्रतीयमान अर्थ की वृत्ति को ही ध्वनि मानते हैं। लिखा है—

इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः।

(काव्यप्रकाश)

अर्थात् "जिसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ अतिशयवाला हो, वह उत्तम काव्य है; इसी को बुद्धिमान् ध्वनि कहते हैं।"

इसी ध्वनि के वर्णन में साहित्य-शास्त्र में बहुत अधिक लिखा गया है, और संस्कृत के ध्वन्यालोक-जैसे ग्रंथ तो केवल इसी विषय पर लिखे गए हैं। उपर्युक्त व्यंग्यार्थ, लक्ष्यार्थ और वाच्यार्थ में उत्तरोत्तर अपकर्ष माना जाता है। व्यंग्य-प्रधान काव्य में ध्वनि प्रधान होती है, और यही उत्तम काव्य माना जाता है।

काव्य-भाषा

किसी भी काव्य की उत्तमता की जाँच करने के लिये केवल यही जानना आवश्यक नहीं कि उसमें रस है या नहीं, वरन् यह भी आवश्यक है कि हम उसकी भाषा को भी परखें। यह कभी न समझना चाहिए कि व्यापारिक भाषा के समान काव्य की भाषा केवल भाव प्रकट करने का साधन है, क्योंकि काव्य की भाषा का उद्देश्य यथार्थ में भाव को मूर्तिमान् करने का है। काव्य की भाषा भावानुगामिनी होनी चाहिए। यदि भाव कविता का जीव है, तो भाषा कविता का शरीर है। भाव की चपलता अथवा गंभीरता आदि के अनुसार ही भाषा की चपलता अथवा गंभीरता आदि का होना आवश्यक है—जिस कविता में भावानुरूपिणी भाषा न हो, वह श्रेष्ठ कविता नहीं कहला सकती। अँगरेज़ी-भाषा के महाकवि पोप ने अपने Essay on criticism में लिखा है—

"It is not enough, no harshness gives offence,
The sound must seem an echo to the sense."

अर्थात् "काव्य की भाषा के लिये केवल यही पर्याप्त नहीं है कि उसमें कर्ण-कटुत्व-दोष न हो, वरन् यह भी आवश्यक है कि शब्द ऐसे हों, जिनके उच्चारण-मात्र से अर्थ प्रतिध्वनित हो उठे।"

भाव के अनुरूप भाषा में एक निराला प्रवाह होता है, जिसे हम भाषा का स्वाभाविक प्रवाह कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त भाषा का व्याकरण-विशुद्ध और समुचित नियंत्रित होना भी परमावश्यक है।

गुण

आर्य-साहित्य के प्राचीन आचार्यों ने काव्य की भाषा में गुण की व्यवस्था दी है। जिस प्रकार मनुष्य में सौंदर्य, सत्यता एवं शूरता आदि गुण हैं, उसी प्रकार काव्य की भाषा में भी माधुर्य, ओज और प्रसाद-गुण हैं। मुख्य गुण ये तीन ही माने गए हैं। मन को द्रवी-

भूत करनेवाले आह्लाद को माधुर्य कहते हैं। यह संभोग-शृंगार, करुण-रस, विप्रलंभ-शृंगार एवं शांत-रस में क्रम से अधिकाधिक रहता है। जिस रचना में टवर्ग का अभाव हो, लंबे-लंबे समास न हों, लघु और सानुस्वार वर्णों का बाहुल्य हो, एवं कोमलकांत पदावली हो, वह माधुर्य-गुण-युक्त होती है। ऐसी रचना में संयुक्त या मिलित वर्णों का प्रयोग न होना चाहिए। इसमें सानुनासिक वर्णों का आना शोभाकर है। ओज दीप्ति को कहते हैं। यह मन को तेज-युक्त करने में कारण है। इस गुण की वीर-रस में स्थिति है। बीभत्स और रौद्र-रस में क्रम से इसका आधिक्य है। यह वर्ग के प्रथम अथवा द्वितीय वर्ण, टवर्ग, श, ष अथवा रेफ, संयुक्त और मिलित वर्ण और लंबे-लंबे समासों से युक्त रचना में होता है। इसमें जिस घटना का वर्णन होता है, वह औद्धत्य-युक्त होती है। मेरे विचार से धकार का अधिकता से प्रयोग भी ओज-गुण में होता है। काव्य के भाव में बुद्धि को शीघ्र प्रविशित कराने की निर्मलता प्रसाद-गुण में रहती है। क्लिष्टत्व-दोष की मलिनता से यह रहित है। यह समस्त रसों और रचनाओं में चित्त को सूखे ईंधन में अग्नि के समान शीघ्र व्याप्त करने में समर्थ रहता है। समर्थ महाकवियों की वाणी में यह गुण सर्वत्र रहता है। इस प्रकार माधुर्य-गुण शृंगार, करुण और शांत में, ओज-गुण वीर, बीभत्स और रौद्र में एवं प्रसाद-गुण संपूर्ण नवरसों में अपेक्षित है। हास्य, भयानक और अद्भुत रसों में किसी विशेष गुण का नियम नहीं। इनमें कभी माधुर्य और कभी ओज रहता है। यहाँ रसों में गुणों का इस प्रकार कथन करने से यह न समझना चाहिए कि रस-हीन काव्य में ये गुण नहीं होते, वरन् यह समझना चाहिए कि शृंगार, करुण तथा हास्य-रसों में ओज-गुण नहीं आना चाहिए, और वीर, बीभत्स एवं रौद्र-रसों में माधुर्य नहीं आना चाहिए। यदि यह बात नहीं मानी जायगी, तो काव्य असुंदर और प्रभाव-हीन हो जायगा। पुत्र-जन्मोत्सव में

रणभेरी और मारू बाजे नहीं सुहाते, युद्ध के समय सितार की गत नहीं भाती। श्रृंगार आदि में माधुर्य और वीर आदि में ओज ही सुहावना लगता है।

कई आचार्यों ने अनेक गुण माने हैं, पर उपर्युक्त तीन गुणों की प्रधानता सभी ने स्वीकार की है।

आचार्य भिखारीदासजी लिखते हैं—

माधुर्योज-प्रसाद के सब गुन हैं आधीन,
तातें इनहीं को गनैं मम्मट सुकवि प्रबीन। (काव्यनिर्णय)

भाषा में इन गुणों के अतिरिक्त अनुप्रास भी होना चाहिए। भिखारीदासजी लिखते हैं—

रस के भूषित करन तें गुन बरनें सुखदानि ;
गुन-भूषन अनुमान कै अनुप्रास उर आनि। (काव्यनिर्णय)

इसमें संदेह नहीं कि अनुप्रास गुण को चमका देते हैं, जिससे गुण रस के उत्कर्ष का हेतु बन जाता है। अनुप्रास ध्वनि-विशेष को लगातार स्थिर रखकर रस को सुस्वादु और प्रभावशाली बना देता है। इसी से अनुप्रास का होना आवश्यक है, पर यह ध्यान रहे कि अनुप्रास सर्वदा रस के अनुकूल हों, एवं भाषा भावानुगामिनी तथा स्वाभाविक प्रवाह-युक्त बनी रहे। अनुप्रास लाने के लिये शब्दों की कपाल-क्रिया करना, व्याकरण-हीन एवं असमर्थ भाषा लिखना या भाषा की स्वाभाविकता नष्ट करना अर्थात् उसे स्वाभाविक प्रवाहमयी न रहने देना कदापि प्रशंसनीय नहीं। अनुप्रास वही प्रशंसनीय एवं वांछनीय है, जो काव्य की भाव-राशि में बाधा न डाले।

इसके अतिरिक्त श्लेष भी भाषा-सौंदर्य का कारण है, पर उसके कारण रचना में क्लिष्टत्व दोष न आना चाहिए। श्लेष केवल ऐसे शब्दों का होना चाहिए, जिनके एक से अधिक अर्थ प्रचलित

भाषा में हों, और लोग जिन्हें सहज ही समझ सकते हों। तात्पर्य यह कि श्लेष के शब्दों में एक से अधिक अर्थ स्पष्टतया भासित होना चाहिए, जिससे माथापच्ची करके अर्थ न निकालना पड़े। श्लेष रस-प्रवाह में बाधक न होकर रसोत्कर्ष का हेतु होना चाहिए, तभी वह प्रशंसनीय है।

इसके बाद यमक की भाषा में आवश्यकता जान पड़ती है, क्योंकि इससे भी काव्य की श्री-वृद्धि होती है। परंतु यमक ऐसे न हों, जो भाषा को जटिल बनाकर रस-प्रवाह में बाधक हों। इससे काव्य में कभी-कभी निराली छटा आ जाती है।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त यह भी ध्यान रहे कि काव्य की भाषा देश, काल एवं पात्र के सर्वथा अनुकूल हो। यदि ऐसा न हुआ, तो काव्य की भाषा में अपेक्षित सजीवता न रह सकेगी। यदि भाषा सजीव न हो, उसमें वक्ता के मनोविकारों की ध्वनि न हो, उसमें वक्ता के हृदय के आह्लाद, क्रोध, करुणा, शोक, चिंता या व्यग्रता आदि की प्रतिध्वनि न हो, तो फिर उस निर्जीव भाषा में माधुर्य, यमक एवं अनुप्रासादि मृत नारी के अंग के आभूषणों के समान निरर्थक ही हैं। इसके सिवा शब्दों के प्रयोग पर भी पूर्ण ध्यान देना आवश्यक है। क्योंकि प्रत्येक शब्द के स्वरूप या अर्थ में कुछ विशेषता होती है। शब्द का यथास्थान, वज़न तौलकर औचित्य-पूर्ण प्रयोग करना ही कवि की कुशलता बतलाता है। यथार्थ में चुने हुए उत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रम से यथास्थान प्रयोग करना ही काव्य की भाषा का प्रधान उद्देश्य होना चाहिए।

काव्य और छंद

भाषा के बाद काव्य में छंद की भी आवश्यकता है। आर्य-जगत् में छंद-शास्त्र का बड़ा मूल्य रहा है, और है। यहाँ तक कि धर्म-ग्रंथों से लगाकर दर्शन-शास्त्र, न्याय, ज्योतिष, वैद्यक एवं कोष आदि

सभी विषयों के ग्रंथ छंदोबद्ध हैं। छंद-शास्त्र का आर्य-जगत् में वैदिक काल से ही प्रारंभ हो गया था, और इसी से "छन्दः पादौ तु वेदस्य" की घोषणा का निदान आज भी गूँज रहा है। छंद-शास्त्र (या पिंगल) और संगीत से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। सच पूछो, तो छंदों पर ही गायन अवलंबित है। इसमें भी छंद का काम विना गायन के चल सकता है, पर गायन का काम छंद के विना सुचारु रूप से चल ही नहीं सकता। छंद के विना गायन 'सरगम' के सिवा और क्या रह सकेगा? जब मनुष्य का हृदय प्रफुल्लित रहता है, तब उससे आनंद-सूचक ध्वनि निकलती है, जो लय-रूप में होती है। जब उसे संकोच नहीं होता, खेद नहीं होता, शोक नहीं होता, क्रोध नहीं होता और वह छल-कपट से रहित शुद्ध सात्त्विक होता है, तब उसके आनंद-पूरित हृदय से एक ध्वनि (लय) निकलती है। यही संगीत की मनोहर ध्वनि की आदि कारण है, और इसी को शुद्ध संगीत अपने कलात्मक संस्कृत रूप में प्रकट करता है। यहाँ यह स्मरण रहे कि ऐसे हर्ष के समय मनुष्य के मन में यह उत्कट अभिलाषा होती है कि वह उस आनंद के समाचार या अपने हर्ष को हास्यादि द्वारा अपने निकटतम प्रेमी अथवा इष्ट-मित्र पर प्रकट करे। आत्मप्रकाश की स्वाभाविक मानवीय प्रेरणा से प्रेरित होकर वह करता भी यही है। इसके लिये भाषा की आवश्यकता होती है। भाषा के विना मनोभाव प्रकट करना दुस्तर है, अतएव वह भाषा की शरण लेता है। इसी कारण भाषा और ध्वनि का संयोग होता है, और छंद-रचना हो जाती है। जिस प्रकार एक मद से उन्मत्त पुरुष कुछ विलंब तक एक-सा बोलता जाता है, उसी प्रकार उस आनंद-विह्वलता में उक्त आह्लादित व्यक्ति भी कुछ देर तक एक ही ध्वनि में कहता जाता है। फल यह होता है कि उसका वर्णन एक छंद के साँचे में ढल जाता है। यही छंद की उत्पत्ति का आदि है। भावावेश के समय प्रतिभा-

शाली कवि की उक्ति छंद में स्वाभाविक रूप से रहती है। यही कारण है कि सभी बड़े-बड़े कवियों की रचना छंदोबद्ध पाई जाती है।

डार्विन आदि विकासवादियों के मतानुसार मनुष्य की सर्व-प्रथम भाषा संगीत-स्वर-पूर्ण थी। आर्य-साहित्य में भगवान् शंकर के डमरू के संगीत-स्वर से भाषा की उत्पत्ति का वर्णन पाया जाता है। यथार्थ में उत्कृष्ट भावमयी कविता पद्यात्मक ही होती है। इसी से साहित्याचार्यों के कविता के गद्य और पद्य, दो भेद बतलाने पर भी जन-समुदाय में गद्य को कविता मानने में संकोच पाया जाता है। साधारणतया लोग पद्य को ही काव्य मानते हैं। अँगरेज़ी-भाषा के सर्वोत्कृष्ट प्रतिभाशाली माननीय महाकवि मिल्टन लिखते हैं—

"A poet soaring in the high realm of his fancies, with his garland and singing robes about him."

अर्थात् "कवि संगीत ही के वस्त्र पहने और माला धारण किए हुए कल्पना के विशाल क्षेत्र में उड़ता रहता है।"

इसमें मिल्टन ने पद्यात्मक कविता ही कविता मानी है। सुप्रसिद्ध विद्वान् साहित्यिक महामना वेब्स्टर साहब की राय है —

"Poetry is the embodiment in appropriate language of beautiful or high thought, imagination or emotion, the language being rhythmical, usually metrical and characterised by harmonic and emotional qualities which appeal to and arouse the feeling and imagination."

इनका तात्पर्य यह है कि उपयुक्त भाषा में सुंदर और उच्च विचारों का समावेश ही कविता है। उसमें कल्पना और भावावेश भी रहना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि उसकी भाषा ध्वनि-पूर्ण पद्यात्मक

हो, और उसकी यह विशेषता भी होनी चाहिए कि उस भाषा के पढ़ने से पाठकों के हृदय में उसी के अनुकूल भावों का उद्रेक हो।

तात्पर्य यह कि बहुमत से और साधारण जन-समुदाय की दृष्टि से कविता पद्यात्मक होनी चाहिए। यह है भी उचित ही। क्योंकि संगीत की लय होने से कविता का जो आनंद पद्यात्मक काव्य में रहता है, वह गद्यात्मक में होता भी तो नहीं है। परंतु हम देखते हैं कि मनुष्य के व्यापार का क्षेत्र दिन-दिन जटिल होता जा रहा है। जैसा सरल सृष्टि के आदि काल में था, वैसा आजकल कहाँ है? जैसा सरल सौ वर्ष पूर्व था, उससे आज पचासगुना जटिल हो गया है, और दिन-दिन जटिल होता जा रहा है। ऐसी अवस्था में मनुष्य का मन स्वार्थपरायणता से संकुचित होता जाता है। इसके कारण वह अपने स्वच्छंद आह्लाद को बहुत कुछ भूलता जाता है। उसका जीवन कुछ-कुछ नीरस-सा होता जाता है। अतएव उसके हृदय में वैसी उमंग नहीं उठती, और इससे आनंद के समय भी उसके मुख से संगीत-ध्वनि नहीं निकलती। पर कविता तो मनोवेगों या भावों पर निर्भर है, और जब तक मनुष्य है, और मनुष्य के मन है, तब तक मनोभाव कहाँ जा सकते हैं? मनोभाव के साथ कविता भी नहीं जा सकती। पूर्ण भावावेश न सही, कुछ न्यून ही सही; पर होता तो है ही। इसी से गद्य-काव्य का जन्म हुआ है। यद्यपि जनसाधारण गद्य-काव्य को काव्य नहीं समझते, पर उसमें यदि रस का निर्वाह है, भाव-पूर्ण भाषा, अलंकार एवं ध्वनि है, तो वह कविता अवश्य है। हाँ, यह अवश्य है कि गद्य-काव्य का स्थान पद्य-काव्य से सदा ही नीचा रहेगा। गद्य में यद्यपि काव्यमयी भाषा के सब गुण आ जाते हैं, पर पद्य की लय से उद्भूत मधुर संगीत कहाँ आ सकता है?

हिंदी का छंद-शास्त्र

हिंदी-भाषा का छंद-शास्त्र अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त है। हिंदी-

भाषा के छंद-शास्त्र में सहस्रों छंद हैं। पिंगल का विस्तार भी प्रस्तार-भेद के कारण हिंदी में विराट् है। यहाँ तक कि हिंदी के छंद-शास्त्र के आचार्यों के मत से—

दुइ कल तें बत्तीस लग छंद बान्नबे लाख—
सहस सताइस चार सै बासठ पिंगल भाख।

इस विस्तार का समझना अत्यंत कठिन है, एवं यहाँ स्थानाभाव भी है। फिर भी यहाँ इतना लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि हिंदी के कवियों को छंदों के लिये उनके पूर्ववर्ती विद्वान् साहित्यिकों ने इतना दे दिया है कि उन्हें किसी का द्वार खटखटाने और किसी भाषा के आगे हाथ फैलाने की आवश्यकता नहीं रह गई है। इन छंदों में सैकड़ों छंद अत्यंत मनोरम और हृदयहारी हैं।

यह बात मैं हिंदू, हिंदी-प्रेमी अथवा हिंदुस्थानी होने के कारण या राष्ट्र-भाषा हिंदी की सम्मान-वृद्धि के उद्देश से नहीं कह रहा हूँ, और न अन्य भाषा-भाषियों के समान पक्षपात से अंधा होकर। ऊट-पटाँग छंदों के विधाता अँगरेज़ भी, जो अपनी भाषा के प्रबल पक्षपाती हैं, हिंदी के मनोहर छंदों पर रीझकर, स्वभाषा की ममता त्यागकर हज़ार मुख से इस विषय में हिंदी की प्रशंसा करते हैं। डॉक्टर फ्रैंक ई० की एम्० ए०, डी० लिट्० अपनी पुस्तक 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' (A History of Hindi Literature) में लिखते हैं—

"There is probably no language in which prosody has been more elaborately developed than in Hindi. Its system is derived ultimately from the principles which govern the Sanskrit poetry. It does not like English depend on accent, but like the classic poetry of Greece

and Rome is based on the quantity of the syllables, long or short. But rhyme is also used almost universally and in Hindi poetry a rhyme means not only the last syllable of a line, but the last two syllables at least correspond with those of another line. A good deal of liberty is allowed in respect of orthography and even of grammatical construction, but the rules for the various metres are very complicated. The result however in the hands of a skillfull poet is the production of poetry, the form and rythm of which has a wonderful charm probably not surpassed in any language. Many metres are specially used in the composition of verses which are intended to be sung. In these the same rhyme is often continued throughout all the lines of the poem."

(Chap. 1, Page 6)

इसका भावार्थ यह है —

"संसार की प्रायः किसी भी भाषा में छंद-शास्त्र की ऐसी परिश्रम-पूर्ण उन्नति नहीं हुई, जैसी हिंदी में। इसका आधार संस्कृत का पिंगल-शास्त्र है, उसी के नियमों पर हिंदी का छंद-शास्त्र अवलंबित है। वह अँगरेज़ी-भाषा के समान उच्चारण के अनुसार चिह्नों या विरामों अथवा लहज़े के नियमों पर अवलंबित न रहकर ग्रीक और रोमन की सर्वोत्कृष्ट विद्वत्ता-पूर्ण कविता या उस्तादाना कलाम (Classic—pertaining to authors of high rank) के ढंग पर है, जिसमें

वर्णों का उच्चारण एक ही मात्रा (utterance) या 'गिरह' में हो सकता है, फिर चाहे ये ह्रस्व हों, चाहे दीर्घ। परंतु तुकांत का भी प्रायः सर्वत्र प्रयोग किया जाता है। हिंदी-कविता में तुकांत का अर्थ किसी पद्यात्मक प्रबंध के चरण या पंक्ति के अंत्य वर्ण का मिलान ही नहीं है, हिंदी-तुकांत में कम-से-कम एक चरण या पंक्ति के अंतिम दो अक्षरों का मिलान दूसरे चरण या दूसरी पंक्ति के अंतिम दो अक्षरों से ऐसा होना चाहिए, जिसमें उनका वज़न बराबर रहे। इसके लिये कवियों को भाषा के शब्दों के शुद्ध रूप को आसानी से समझे जाने-वाले अशुद्ध रूप में लिखने की बहुत स्वतंत्रता दे दी गई है। साथ-साथ व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करने की भी आज्ञा दे दी गई है। (पर यहाँ यह ध्यान रहे कि ऐसी स्वतंत्रता बड़ी आवश्यकता पड़ने पर ही उपयोग में लाई जा सकती है, सर्वत्र नहीं। क्योंकि यह तो निर्वाह की बात है, कुछ स्तुत्य थोड़े ही है।) भिन्न-भिन्न छंदों के निर्माण करने के नियम बहुत कुछ उलझन में डालनेवाले हैं। फिर भी परिणाम यह हुआ कि बुद्धिमान्, चतुर कवियों के हाथों से ऐसे काव्य की रचना हुई, जिसके पद्यात्मक रूप और ध्वनि में कुछ ऐसी विचित्र मोहिनी है, जिसके सामने संसार की किसी भी भाषा का काव्य नहीं ठहर सकता। हिंदी के पिंगल में छंदों की संख्या बहुत अधिक है। अनेक छंद विशेषकर ऐसी कविताओं की रचना के लिये प्रयुक्त होते हैं, जो गाई जाती हैं। ऐसे छंद संगीतमय होने से मज़े में गाए जाते हैं।"

आप पुनः लिखते हैं—

"The best Hindi writers have produced a great deal of verse which is very graceful and artistic and it must be said that the strict rules as to versification and their great elaboration

have helped to make Hindi Poetry almost unrivalled for melody and rhythm."

(Chap. XI, page 101)

इनका तात्पर्य यह है कि हिंदी के सर्वोत्कृष्ट कवियों ने एक बहुत बड़े परिमाण में ऐसा पद्य-काव्य निर्माण किया है, जो बहुत ही महत्त्व-पूर्ण सौंदर्य से युक्त (graceful—beautiful with dignity) और कला-संपन्न है। और, यह तो विवश होकर कहना ही पड़ता है कि छंद-शास्त्र के कड़े नियमों और उसके भारी परिश्रम ने हिंदी-काव्य को तुकांत और ध्वनि या तरंग की मनोहरता में अद्वितीयप्राय बना दिया है।

तुक, अनुप्रास और छंद

आजकल तुकांत और अतुकांत कविता पर भी विवाद उठा है। पर यह व्यर्थ है। यदि उनमें रस हो, तो वे चाहे तुकांत छंद हों, चाहे अतुकांत, कविता उनमें अवश्य है। रही यह बात कि उत्तम कौन है? सो यह तो विवश होकर कहना ही पड़ता है कि अतुकांत की अपेक्षा तुकांत में माधुर्य और मनोहरता की अत्यधिक विशेषता रहती है। इसी से अतुकांत से तुकांत पद्य ही श्रेष्ठतर है।

अतुकांत कविता तुकांत कविता से तन्मयता, मनोहरता और सौंदर्य में फीकी भले ही हो, पर यदि उसमें सरसता है, भावोत्कृष्टता है, तो वह कविता अवश्य है। कई लोग जो अतुकांत कविता की निंदा करते हैं, उसे भद्दी कहते हैं, उन्हें तुकांत कविता के प्रबल पक्ष-पाती ब्रजभाषा के सुकवि, मर्मज्ञ साहित्यिक स्वर्गीय राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के निम्न-लिखित कथन को ध्यान में रखना चाहिए। पूर्णजी ने लिखा है—"जिन छंदों में तुक अपरित्याज्य है, उनमें तुक का न लाना अवश्य बेतुकापन होगा, परंतु बहुत-से छंद ऐसे हैं, जो धारा-प्रवाह कविता करने के लिये उपयोगी हैं, और जिनमें तुक न लाने से

काव्य-सौंदर्य में हानि न होगी।.. इसके लिये भाषाओं की जननी संस्कृत को देखो।"

(चंद्रकला-भानुकुमार-नाटक की भूमिका)

छंद के स्वरूप पर अत्यंत संक्षेप में प्रकाश डालने के पूर्व मैं यहाँ इतना निवेदन कर देना आवश्यक समझता हूँ कि हिंदी के कवियों को छंद-शास्त्र की विशालता से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। छंद-शास्त्र के संपूर्ण विस्तार को जानने की प्रत्येक कवि को कुछ ऐसी आवश्यकता भी नहीं। हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार महाकवि श्री-बिहारीलाल-जैसों ने अपनी समग्र रचना केवल दोहा-छंद में समाप्त कर दी है। और भी अनेक ऐसे कवीश्वर हैं, जिन्होंने दो-चार छंदों में ही अपनी समग्र रचना रख दी है। पर इतना ध्यान रहे कि छंद की तौल उसकी ध्वनि से ही हो सकती है, और छंदों की यथार्थ तुला कान ही हैं। आचार्य-प्रवर महाकवि केशवदासजी ने तो 'कविप्रिया' में स्पष्ट कहा है —

तौलत तुल्य रहै न ज्यों कनक-तुला तिल आध,
त्यों ही छंदोभंग को सह न सकत श्रुति-साध।

इसी कारण ध्वनि का ज्ञान न होने से पिंगल के नियम को पालन करने पर भी कभी-कभी छंद ठीक नहीं बन पाते। छंद-शास्त्र के अनुसार दोहा-छंद के प्रथम एवं तृतीय चरणों में तेरह-तेरह और द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु-लघु का नियम है। परंतु दोहा-छंद की ध्वनि न मिलने से उक्त नियम के पालन करने पर भी दोहा-छंद नहीं बन पाता। जैसे —

(१) गोविंद नाम जाहि में, संगीत भलौ जान। [ध्वनि-हीन]
(२) सीताबरै न भूलिए जौ लौं घट में प्रान। [ध्वनि-युक्त]

(छंद-प्रभाकर)

इन दोनो में गुरु-लघु का क्रम, मात्रादि की गणना तथा अंत में

गुरु-लघु का क्रम बिलकुल एक ही है, पर दोनो में आकाश-पाताल का अंतर है। वास्तव में छंद-रचना ध्वनि ही से होती है। जिसको छंद की ध्वनि या लय सिद्ध हो जाती है, उसे छंद-रचना एक स्वाभाविक बात-सी हो जाती है। यहाँ कई लोग कहेंगे कि जब ऐसा है, तब छंद-शास्त्र की आवश्यकता ही क्या? वह तो बिलकुल निरर्थक ही है। परंतु ऐसे लोगों को ध्यान रखना चाहिए कि उनका कथन निर्मूल है। जिस प्रकार भाषा और व्याकरण का संबंध है, उसी प्रकार छंद और पिंगल का संबंध है। भाषा के बोलने का काम जिस प्रकार बिना व्याकरण के चल सकता है, उसी प्रकार छंद-रचना का कार्य भी बिना पिंगल के चल सकता है। हाँ, एक बात अवश्य है। जिस प्रकार सुंदर, सुसंगठित, प्रयोग-साम्य, मनोहारिणी, विशुद्ध साहित्यिक भाषा का काम बिना व्याकरण के नहीं चल सकता, उसी प्रकार छंद-रचना की मनोहरता, शुद्धि एवं निर्दोषिता बिना छंद-शास्त्र के नहीं रह सकती। इसी से जैसे भाषा को व्याकरण चाहिए, वैसे ही छंद-रचना को पिंगल चाहिए। यह तो विद्वानों की वस्तु है, एवं महान् उपयोगी है।

अलंकार

काव्य में अलंकार की भी आवश्यकता है। अलंकार-शास्त्र बहुत ही आवश्यक शास्त्र है। आचार्य दंडी ने कहा है—

वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते।

अर्थात्, "संसार का व्यवहार वाणी ही की कृपा से चलता है।"

तथा—इदमन्धंतमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्;
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।

अर्थात्, "यदि शब्द (भाषा)-रूपी ज्योति संसार के आरंभ से लेकर महाप्रलय तक प्रकाशमान न रहती, तो संपूर्ण तीनो लोकों में घोर अंधकार रहता।"

अग्निपुराण में अलंकार-शास्त्र को आवश्यक बतलाते हुए भगवान् वेदव्यास ने अर्थालंकार-निरूपण के आरंभ ही में लिखा है—

अलङ्करणमर्थानामर्थालङ्कार इष्यते ;
तं विना शब्दसौंदर्यमपि नास्ति मनोहरम् ।

अर्थात्, "जो अर्थ को सुशोभित करनेवाला है, वही अर्थालंकार है। उसके विना शब्द का सौंदर्य भी मनोहर नहीं होता।"

व्यासजी के इसी वाक्य का अनुसरण करते हुए महाराजा भोजदेव अपने 'सरस्वती-कंठाभरण' में अलंकार को 'अलमर्थमलङ्कतु:' अर्थात् सुंदर अर्थ को अलंकृत करनेवाला मानते हैं। अर्थालंकार के विषय में तो व्यासजी ने अग्निपुराण में स्पष्ट घोषणा की है—

'अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती।'

अर्थात्, "अर्थालंकार-रहित सरस्वती (वाणी) विधवा के समान (श्री-विहीन) है।"

अलंकार-शास्त्र और उसकी उपयोगिता

वेदव्यासजी का उपर्युक्त मत बड़ा ही विचार-पूर्ण है। कोई भी धार्मिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक या राजनीतिक ग्रंथ अलंकार-रहित नहीं मिलेगा, कोई भी शास्त्र अलंकार-शास्त्र को त्यागकर नहीं चल सकता। तात्पर्य यह कि अलंकार-शास्त्र अत्यंत आवश्यक है। न्याय-शास्त्र भी उपमान-प्रमाण को मानता है। उसे भी उपमा-अलंकार का आश्रय लेना पड़ता है। यथार्थ में जो बात शब्द और अनुमान-प्रमाण द्वारा कभी ध्यान में भी नहीं आ सकती, जो अप्रत्यक्ष है, उसका बोध उपमा से शीघ्र ही हो जाता है। वस्तु के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये उसी प्रकार के रूप-गुणवाली वस्तु का ध्यान कराना कभी-कभी अनिवार्य हो जाता है। साधारण बोलचाल में भी —नित्य के व्यवहार में भी —अलंकार की आवश्यकता होती है। इसी कारण आचार्यों ने विवेचना करके अलंकार को एक पृथक् शास्त्र माना है, जो सर्वथा

उपयुक्त है। यदि भारतीय अलंकार-शास्त्र की गहनता पर विचार करें, तो यही कहना पड़ेगा कि अलंकार-शास्त्र दर्शन-शास्त्र के समान गहन है।

लोगों की दृष्टि में अलंकार-शास्त्र कोई प्रयोजनीय या आवश्यक शास्त्र नहीं। ऐसे लोग कभी-कभी कह उठते हैं कि अलंकार-शास्त्र पर विचार करनेवाले विलक्षण प्रतिभा-संपन्न विद्वानों का प्रयास व्यर्थ ही है। वे अपने जीवन के अमूल्य समय को व्यर्थ ही नष्ट कर गए हैं। ऐसे लोगों से कहा ही क्या जा सकता है? इनके दल में कुछ ऐसे भी लोग हो गए हैं, जो दर्शन-शास्त्र आदि को व्यर्थ का पचड़ा समझ बैठते हैं।

अलंकारों को अनावश्यक समझनेवाले लोगों को ध्यान रखना चाहिए कि यदि अलंकार-शास्त्री उनसे अलंकार छीन लें, तो संसार का व्यवहार चलना असंभव-सा हो जाय। 'इस प्रकार', 'इसी तरह', 'ऐसा' आदि शब्द भाषा से एकदम निकल जायँगे। भाषा बिलकुल नग्न हो जायगी—निरानंद हो जायगी।

भाषा-सौंदर्य को अक्षुण्ण रखने के लिये, संसार के व्यापार को क़ायम रखने के लिये, भिन्न-भिन्न विषयों और शास्त्रों की विवेचना करने के लिये अलंकार-शास्त्र की अनिवार्य रूप से आवश्यकता पड़ती है। अलंकार-शास्त्र के विरोधी यहाँ पर यह कह सकते हैं कि जब बिना अलंकार-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किए ही लोगों का काम चल सकता है, तब अलंकारों के जानने की क्या आवश्यकता? क्या यह व्यर्थ का बोझा नहीं है? ऐसे प्रश्न करनेवालों से मैं तो यही कहूँगा कि जब बिना गणित-शास्त्र जाने संसार का व्यवहार चल सकता है, तब गणित-शास्त्र के अध्ययन की क्या आवश्यकता? जब बिना समाज-शास्त्र का अध्ययन किए मनुष्य समाज में आजन्म निभ सकता है, तब समाज-शास्त्र की क्या आवश्यकता? जब बिना ज्योतिष्

या खगोल-शास्त्र के अध्ययन के लोग दिन और रात जान सकते हैं, वार और मास जान सकते हैं, शुक्ल-पक्ष और कृष्ण-पक्ष जान सकते हैं, तब ज्योतिष् या खगोल-शास्त्र की क्या आवश्यकता ? जब बिना राजसत्ता के—बिना सामाजिक प्रबंध के—लोग अपना व्यवहार चला सकते हैं, तब किसी भी प्रकार की राजसत्ता (Government) या समाज की क्या आवश्यकता ? जब बिना अर्थ-शास्त्र का अध्ययन किए लोग अपना ख़र्च चला सकते हैं, प्रबंध कर सकते हैं, तब अर्थ-शास्त्र की क्या आवश्यकता ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर यही मिलेगा कि कार्य तो चल सकता है, पर सुचारु रूप से नहीं । कार्य चलना और बात है, तथा कार्य का सुचारु रूप से संपादन होना और बात । मैं भी यहाँ यही कहता हूँ कि अलंकार-शास्त्र के अध्ययन के बिना भी भाषा का लिखना और बोलना हो सकता है, पर सुचारुतया नहीं ।

संसार में आज जो मधुर और प्रौढ़ भाषा बोली जाती है, शिक्षित-समाज जिस भाषा को अपनाए हुए है, जो भाषा शिक्षित सभ्य-समाज को अशिक्षित, असभ्य, जंगली लोगों से श्रेष्ठ बनाए है, वह अलंकार के आश्रित है । सभ्यता की निशानी, उन्नतावस्था का चिह्न किसी राष्ट्र की आलंकारिक, प्रौढ़ भाषा ही है । आचार्य जयदेव का मत है—

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ;
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती । (चंद्रालोक)

अर्थात्, "जो अलंकार-रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानता है, वह अग्नि को उष्णता-रहित क्यों नहीं मानता ?"

मेरी समझ में चंद्रालोककार आचार्य जयदेव का मत बहुत ही समीचीन है । जिसमें चित्त को चमत्कृत करनेवाला, अलौकिक आनंद देकर हृदय को रस-पूरित करनेवाला गुण न हो, वह कविता ही कैसी ? जिस कविता में कुछ चमत्कार होगा, उसमें अलंकार अवश्य-

मेव होगा। उसमें चाहे अर्थालंकार हो, चाहे शब्दालंकार हो, चाहे उभयालंकार हो, होगा अवश्य। कहीं-कहीं अलंकार अस्फुट दशा में भी होता है। ऐसी स्थिति में अलंकार-शास्त्रवेत्ता उसे अलंकार नहीं मानते। वे कहते हैं, जहाँ अलंकार स्फुट हो, वहीं अलंकार की सत्ता मानी जानी चाहिए। उनका मत है कि अलंकार की अस्फुट दशा में चमत्कार रस का होगा, अलंकार का नहीं। इसी दृष्टि से आचार्य-प्रवर भाम मम्मट ने लिखा है —

तददोषो शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।
(काव्यप्रकाश)

अर्थात्, "दोष-रहित और गुण-सहित शब्द और अर्थ काव्य है। फिर कहीं अलंकार-रहित भी काव्य होता है।"

अलंकार से काव्य में, वस्तु-वर्णन में, विशेष सहायता प्राप्त होती है। रस-परिपाक के लिये, वस्तु के विशद चित्र को स्पष्ट करने के लिये एवं व्यापार के चित्र को चटकीला बनाने के लिये काव्य में अलंकारों की बड़ी आवश्यकता होती है। यदि हम कहें कि श्रीकृष्ण की आँखें बड़ी-बड़ी थीं, तो इससे हमें यह भी नहीं जान पड़ता कि वे कितनी बड़ी थीं? क्या वे इतनी बड़ी थीं कि उनके देखने से भय उत्पन्न होता था? या उनसे भद्दापन टपकता था? क्या उनका आकार आवश्यकता से बहुत अधिक था? ऐसी स्थिति में हमें अलंकार का आश्रय लेना पड़ता है। हम कहते हैं, वे आँखें मृग-शावक की आँखों के समान विशाल थीं। इससे हमें तुरंत ही यह बोध हो जाता है कि कृष्ण की आँखें मृग के बच्चे की आँखों के समान सुंदर, कटीली और जितनी चाहिए, उतनी आयत थीं, जिनसे सौंदर्य टपका पड़ता था।

अलंकार-भेद

अलंकार-शास्त्र के आचार्यों ने, सर्वसम्मत से, अलंकारों को तीन

प्रधान भागों में विभाजित किया है—(१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार।

(१) शब्दालंकार—जहाँ शब्दों में चमत्कार रहता है, वहाँ शब्दालंकार होता है। स्मरण रहे, शब्दालंकार-पूर्ण वाक्य में शब्दालंकार के शब्दों के पर्यायवाची शब्द रखते ही शब्दालंकार न रहेगा। जैसे—

कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाइ,
उहि खाएँ बौरात हैं, इहि पाएँ बौराइ।
(बिहारी)

इसमें 'कनक कनक' के प्रयोग में शब्दालंकार है। यदि हम कनक का पर्यायवाची 'धतूरा' या 'स्वर्ण' लिख दें, तो फिर इसमें कोई चमत्कार न रहेगा।

शब्दालंकार का प्रयोग भाषा का सौंदर्य बढ़ाने के उद्देश्य ही से किया जाता है। कहीं-कहीं इनसे भाव भी कुछ ज़ोरदार हो जाता है। मेरे विचार से तो शब्दालंकारों का विचार भाषा के साथ ही होना चाहिए, क्योंकि यथार्थ में ये भाषा-सौंदर्य के बढ़ानेवाले ही होते हैं।

(२) अर्थालंकार - यथार्थ में अर्थालंकार ही प्रधान अलंकार हैं, और इसी से भगवान् व्यासदेव आदि ने इन्हें ही आवश्यक माना है। अर्थालंकार वहाँ होता है, जहाँ अर्थ में चमत्कार होता है। इससे तात्पर्य यह कि यदि हम अर्थालंकार को निकालकर किसी वाक्य का अर्थ कहें, तो उसमें फिर वैसी रोचकता एवं सुंदरता न रह जायगी। जैसे, 'मुख चंद्र-सा सुंदर है', इस वाक्य को यदि हम अर्थालंकार-हीन करके कहें, तो इसका यह रूप होगा कि 'मुख सुंदर है।' इस रूप में ज्योति, स्निग्धता और शांतिप्रदायिनी मनोहरता का अर्थमय चमत्कार नहीं रह जाता।

(३) उभयालंकार—उपर्युक्त दोनो अर्थात् शब्दालंकार और

अर्थालंकार के विशुद्ध रूपों के अतिरिक्त ऐसे अलंकारोदाहरण भी पाए जाते हैं, जिनमें एक से अधिक अलंकार दर्शित होते हैं। इनमें कहीं दो और कहीं दो से अधिक शब्दालंकार या अर्थालंकार, मिश्रित रूप से, आते हैं। इनमें कहीं शब्दालंकार से शब्दालंकार का, कहीं शब्दालंकार से अर्थालंकार का और कहीं अर्थालंकार से अर्थालंकार का मिश्रण रहता है। यह मिश्रण भी द्विविध है—(१) संसृष्टि और (२) संकर। जहाँ संपूर्ण मिश्रित अलंकार तिल-तंदुल के समान पृथक्-पृथक् सत्ता में प्रकट रहते हैं, वहाँ संसृष्टि-अलंकार होता है, और जहाँ क्षीर-नीर के समान अभिन्न रूप में तदाकार रहते हैं, वहाँ संकर अलंकार होता है।

इन संपूर्ण अलंकार-भेदों के अनेक उपभेदों की दार्शनिक मीमांसा अलंकार-शास्त्र पर लिखे गए अनेक ग्रंथों में द्रष्टव्य है। इस शास्त्र की विद्वत्ता-पूर्ण विवेचना-शैली पर बुद्धि मुग्ध हो जाती है, और मन नाचने लगता है। यद्यपि अलंकारों की उत्पत्ति काव्य में स्वाभाविक है, पर इनका प्रयोग सिखलाना एवं प्रयोग के औचित्य-अनौचित्य एवं उत्कर्ष-अपकर्ष आदि पर वैज्ञानिक सरणी से विचारकर, उनका यथोचित ज्ञान देकर उनके पूर्ण आनंद का उपभोक्ता बनाना अलंकार-शास्त्र का कार्य है। अलंकारों में उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा एवं स्वभावोक्ति, ये अर्थालंकार और अनुप्रास, यमक तथा श्लेष, ये शब्दालंकार सर्वमत से प्रधान अलंकार हैं। उत्तम काव्य में इनका ही प्रयोग प्रधान रूप से पाया जाता है।

काव्य में रीति

अलंकार के बाद अब काव्य में रीति और रह गई। रीति के विषय में कविराजा मुरारिदानजी की प्रामाणिक संक्षिप्त विवेचना अत्यंत समीचीन हुई है। हम उसे पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। वह यह है—

"देश, जाति आदि भेद से मनुष्यों में रीति-भेद अर्थात् रिवाज में भेद होता है, वैसे ही काव्य-रचना में भी देश आदि भेद से रीति-भेद होता है। पांचाल-देश की काव्य-रचना लौकिक व्यवहार और शास्त्रीय व्यवहार-युक्त कोमल और छोटे-छोटे समासोंवाली होती है, इसलिये ऐसी काव्य-रचना में पांचाली रीति कहलाती है। गौड़-देश की काव्य-रचना लौकिक व्यवहार और शास्त्रीय व्यवहार करके रहित, नियम-रहित और दीर्घ समासोंवाली होती है, इसलिये ऐसी काव्य-रचना में गौड़ी रीति कहलाती है। वेदव्यास भगवान् ने अग्निपुराण के तीन सौ चालीसवें अध्याय में इनके लक्षण कहे हैं—

उपचारयुता मृद्वी पांचाली ह्रस्वविग्रहा;
अनवस्थितसंदर्भा गौडीया दीर्घविग्रहा।
उपचारैर्न।

"जो रीति उपचार अर्थात् व्यवहार करके युक्त होवे, कोमल होवे, और जिसमें छोटे-छोटे समास होवें, वह पांचाली; जिस रीति में कोई व्यवस्था नहीं अर्थात् नियम नहीं, उपचार अर्थात् व्यवहार नहीं और दीर्घ समास होवें, वह गौड़ी। इसी प्रकार विदर्भ-देश की काव्य-रचना की रीति वैदर्भी और लाट देश की काव्य-रचना की रीति लाटी कहलाती है, इत्यादि। कौशिक मुनि की काव्य-रचना की रीति कौशिकी कहलाती है। भरत मुनि की काव्य-रचना की रीति भारती कहलाती है, इत्यादि। ग्रंथ-विस्तार-भय से यहाँ सबके लक्षण, उदाहरण नहीं दिखाए गए हैं। हमारे मत उक्त रीतियों का काव्य की रमणीयता में कुछ भी उपयोग नहीं है। इसीलिये बहुत-से ग्रंथकारों ने रीतियाँ नहीं कही हैं। बहुधा हरेक देश की काव्य-रचना भिन्न-भिन्न रीति से होती है।"

(जसवंत-जसोभूषण, पृष्ठ १४२-१४३)

सारांश

इस प्रकार काव्य में रस, ध्वनि (व्यंग्य), लक्षणा, अभिधा,

माधुर्यादि गुण, छंद एवं अलंकार आदि आ जाते हैं। इनसे यथोचित-संपन्न विशुद्ध पद्य-लेख ही साहित्यिकों की दृष्टि में काव्य होता और स्थायित्व ग्रहण करता है। इसका ज्ञान अत्यंत आवश्यक होने के कारण ही साहित्य में रीति-ग्रंथों का प्रणयन किया गया है। उन ग्रंथों में ये विषय विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। यहाँ तो मैं स्थानाभाव के कारण इनका, संक्षेप में, स्थूल रूप से उल्लेख-मात्र कर सका हूँ।

२. ब्रजभाषा और उसका साहित्य

ब्रजभाषा का महत्त्व और विशालता

यहाँ प्रसंग-वश ब्रजभाषा के विषय में कुछ निवेदन करना आवश्यक जान पड़ता है, क्योंकि कई सौ वर्ष तक ब्रजभाषा ही अधिकांश भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा और काव्य-भाषा के सिंहासन पर आसीन रही है, और आज भी सजीव और प्रचलित काव्य-भाषा है। इसका साहित्य अत्यंत समुन्नत और विशाल है। राष्ट्र-भाषा हिंदी का सर्वोत्कृष्ट अंग ब्रजभाषा में ही है। पर खेद है कि अनेक व्यक्तियों की ऐसी मिथ्या धारणा हो गई है कि हिंदी अन्यान्य प्रांतीय भाषाओं के मुक़ाबले हीन है। ये लोग न तो परिश्रम करके हिंदी-साहित्य का अध्ययन करना चाहते हैं, और न हिंदी-साहित्य-विशारदों से उसके विषय में पूछ-ताछ ही करना चाहते हैं। इतने पर भी अनधिकार चेष्टा करके हिंदी-साहित्य को हीन कह बैठते हैं! इनमें से अधिकांश अँगरेज़ी के भक्त हैं, और कुछ संस्कृत के प्राचीन पंडित तथा बँगला और मराठी के हिमायती। हिंदी के समान अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं में प्रसरित विशाल साहित्य और प्रांतीय भाषाओं में हो ही कैसे सकता है? कारण, इसमें ही तो हिंदू-जाति के गत ६०० वर्षों के उत्थान तथा पतन का भिन्न-भिन्न भावनामय, सजीव शब्द-चित्र अंकित है। इसमें ज्ञान, विज्ञान, कला, प्रकृति-

पर्यवेक्षण, धर्म और नीति की ऐसी विशद आलोचना हुई है, जिसकी समता नहीं।

हिंदी-साहित्य का गौरव

किसी जाति को जीवित रखने में साहित्य कहाँ तक सहायता पहुँचा सकता है, इसे जानना हो, तो हिंदी के प्राचीन साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। हिंदू-जाति की रक्षा करने में इसका बड़ा हाथ है। फिर संस्कृत को छोड़कर अन्य किसी भारतीय भाषा में ऐसा समुन्नत साहित्य है भी नहीं। यह बात मैं ही नहीं कहता, बड़े-बड़े पंडितों का भी यही मत है। भारत-प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डॉक्टर राजेंद्रलाल मित्र एल्-एल्० डी०, सी० आई० ई० अपने 'Indo-Aryans'-नामक पुरातत्त्व-विषयक ग्रंथ में लिखते हैं—

"The Hindi is by far the most important of all the vernacular dialects of India. It is the language of the most civilised portion of the Hindu race. Its history is traceable for a thousand years and its literary treasures are richer and more extensive than of any other modern Indian dialect."

अर्थात्, "भारत की सब भाषाओं में हिंदी ही सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है। वह हिंदू-जाति के सबसे अधिक सभ्य अंग की भाषा है। उसके इतिहास का पता आज से एक हज़ार वर्ष पूर्व से लगता है, और उसका साहित्य-भांडार भारत की किसी भी वर्तमान भाषा (बँगला, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि) की अपेक्षा अधिक वैभव-शाली और विस्तृत है।"

भारत की वर्तमान भाषाओं के व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले सुप्रसिद्ध विद्वान् सिविलियन मिस्टर बीम्स (Mr.

Jhon Beams.) 'Comparative Grammer of the Modern Aryan Languages of India' में लिखते हैं—

"Hindi represents the oldest and most widely diffused form of Arvan speech in India. In respect of Tadbhavas Hindi stands pre-eminent."

अर्थात्, "भारत में आर्यों की सबसे प्राचीन और विशाल क्षेत्र में प्रचलित भाषा हिंदी है। इसमें तद्भव शब्द अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अधिक हैं।"

सन् १६०१ ईस्वी की मनुष्य-गणना के विवरण में लिखा है—

"In themselves, without any extraneous help whatever, the dialects from which it (Hindi) is sprung are, and for five hundred years have been, capable of expressing with crystal clearness any idea which the mind of man can concieve. It has an enormous native vocabulary and a complete appratus for the expression of abstract terms. Its old literature contains some of the highest flights of poetry and some of the most eloquent expressions of religious devotion which have found their birth in Asia. Treatises on Philosophy and on Rhetoric are found in it, in which the subject is handled with all the subtlety of the great Sanskrit writers and has hardly the use of a Sanskrit word."

अर्थात्, "जिन वैदिक बोलियों से स्वतंत्रतया, विना किसी सहायता के, हिंदी-भाषा बनी है, वे पाँच सौ वर्षों से अत्यंत स्पष्टता-पूर्वक मनुष्यों के मनोभावों को प्रकट करने में सक्षम हैं। हिंदी का भारी शब्द-भांडार स्वतंत्र रूप से उसकी निजी संपत्ति है, अर्थात् वह संस्कृत एवं प्राकृत आदि किसी भी भाषा से नहीं लिया गया है। उसे मनुष्यों ने प्रकृत रूप से ग्रहण किया है। इस भाषा में कठिनाति-कठिन — गहनातिगहन — परिभाषाओं को सुस्पष्टतया प्रकटित करने की पूर्ण सामर्थ्य है। इसके प्राचीन साहित्य में कवि-कल्पना की ललित, गंभीर, ऊँची उड़ान(बलंदपरवाज़ी)-युक्त सर्वोच्च काव्य और उन धर्म-भक्ति के धाराप्रवाही, गंभीर गवेषणामय विवेक-विचारों से युक्त ऐसा धार्मिक साहित्य है, जिसका जन्म एशिया में हुआ है। उसमें दर्शन और अलंकार—लौकिक और पारलौकिक साहित्य—पर लिखे गए अनेक ग्रंथ-रत्न पाए जाते हैं, जिनमें अपने विषय का वर्णन इतना उच्च कोटि का है, जितना विश्व-पूज्य महर्षियों-सदृश महान् लेखकों द्वारा प्रणीत संस्कृत-साहित्य के ग्रंथ-रत्नों में है। उनमें विषयों का मार्मिक वर्णन और उन पर की गई विचार-प्रणाली की श्रेष्ठता वैसी ही है, जैसी उस विषय के संस्कृत-ग्रंथों की। इतने पर भी विशेषता यह है कि ऐसे सर्वोच्च विषयों पर लिखे गए ऐसे उत्कृष्ट ग्रंथ वे हैं, जिनमें हिंदी का निजी शब्द-भांडार है। अन्य किसी भाषा का कोई शब्द नहीं है।"

जो हिंदी-साहित्य को मराठी-साहित्य से हीन समझते हैं, वे यह देखें कि मराठी के सर्वश्रेष्ठ कवि, महाराष्ट्र-कोकिल महाकवि मयूर पंत (मोरो पंत) अपनी रचनाओं में हिंदी-कवियों के विषय में कैसा आदरणीय भाव व्यक्त कर गए हैं। उनका मत उन्हीं की भाषा में देखिए, कैसी झलक दिखला रहा और हिंदी की शोभा सरसा रहा है। लिख गए हैं—

श्रीसूरदास, तुलसीदास, कबीरादि सुकवि कवनांतें ;
सोडुनि, लावील, कवण रसिक दुजाशीं रिझोनि नवनांतें ।

अर्थात् "वह कौन अभागा रसिक होगा, जो श्रीसूरदास, तुलसीदास, कबीरदास आदि हिंदी के सुकवियों के काव्यों को छोड़कर दूसरों से नवीन नाता जोड़े ।"

बंगाली अपनी भाषा की प्रशंसा आवश्यकता से अधिक करते हैं, यहाँ तक कि उनका यह गुण औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर जाने के कारण दोष हो गया है । वे बंगाली भी हिंदी-साहित्य की गरिमा के क़ायल हैं । मैं विश्व-विख्यात कवि-श्रेष्ठ रवींद्रनाथ ठाकुर की बात नहीं कहता, वह तो सूर, तुलसी और कबीर आदि की रचनाओं के भक्त हैं ही, मेरा कथन तो यह है कि बंगाल के अन्य विद्वान् सज्जन भी हिंदी-साहित्य की गरिमा और गंभीरता पर पूर्ण-रूपेण मोहित हो जाते हैं । बंगाल के प्रसिद्ध देश-भक्त विद्वान् स्वर्गीय बाबू मनोरंजन ठाकुर अपनी 'निर्वासित कहानी'-नामक खोज-पूर्ण गवेषणामय पुस्तक में लिखते हैं—

"प्रायः तीन सौ वर्ष पहले स्वामी निश्चलदास ने 'विचार-सागर' और 'वृत्ति-प्रभाकर' की रचना की थी । वर्तमान वंगभाषा के वैभव-शालिनी-होने पर भी इस श्रेणी के ग्रंथ उसके भांडार में नहीं पाए जाते !"

कहाँ विद्वान् बंगाली साहित्यिकों का यह कहना और कहाँ कुछ हिंदी-भाषियों का यह कहना कि बँगला के सम्मुख हिंदी दीन-हीन है ! कैसी विषमता है !!

तात्पर्य यह कि हिंदी-साहित्य तो अगाध है, वैभवशाली है, हिंदी के सागरोपम विशाल साहित्य में प्रायः संपूर्ण विषयों के एवं संपूर्ण भावनाओं को प्रकट करनेवाले सब प्रकार के ग्रंथों का भांडार है । पर बात यह है कि समालोचना-प्रदीप के अभाव में हिंदी की निधि

अंधकार में है। यथार्थ में तो हिंदी का साहित्य इतना समुन्नत है कि उसके प्रकाश में आते ही केवल भारत ही नहीं, वरन् संपूर्ण एशिया महाद्वीप गर्व से सीना फुलावेगा।

हिंदी-गौरव का कारण

हिंदी के इस विशाल साहित्य के गौरवमय होने का प्रथम कारण यह है कि हिंदी के प्राचीन लेखकों तथा कवियों का ख़ूब ही सम्मान रहा है। जहाँ एक ओर हिंदी को हिंदू-नरेशों ने अपनाया, वहाँ दूसरी ओर मुसलमान बादशाहों और नवाबों ने भी इसे उन्नत बनाने में हाथ बँटाया। हम देखते हैं, ये बड़े-बड़े बादशाह और राजे-महाराजे हिंदी के सहायक ही नहीं, वरन् धुरंधर लेखक और कवि भी थे। संसार की किसी भी भाषा में इतने राजों, महाराजों, नवाबों और बादशाहों ने रचना नहीं की। इनमें चित्तौड़ाधिपति वीरवर महाराणा कुंभ, मुग़ल-सम्राट् अकबर, सेनापति नव्वाब अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना, महाराजा पृथ्वीराज (बीकानेर-नरेश), महाराजा मानसिंह, बीजापुर के बादशाह इब्राहीम आदिलशाह, बुंदेलखंड-केसरी महाराजा छत्रसाल, महाराजा इंद्रजीतसिंह (ओड़छा), महाराणा राजसिंह (मेवाड़), महाराजा राजसिंह (कृष्णगढ़), महाराष्ट्र-केसरी महाराजा शिवाजी, महाराजा संभाजी (सतारा), महाराजा सावंत-सिंह (नागरीदास), महाराजा मुकुंदसिंह हाड़ा (कोटा-नरेश), महाराजा मानसिंह (जोधपुर), महाराजा सवाई जयसिंह (आमेर), महाराजा अजीतसिंह (जोधपुर-नरेश), महादाजी सिंधिया (ग्वालियर-नरेश), महाराजा जसवंतसिंह (जोधपुर), दौलतराव सिंधिया (ग्वालियर-नरेश), महाराज विक्रमादित्य (चरखारी-नरेश), मुग़ल-सम्राट् जहाँगीर, महाराजा रघुराजसिंह (रीवाँ) तथा महाराज जसवंतसिंह (तिरवा-नरेश) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ ध्यान से देखने पर यह जान पड़ता है कि एक ओर तो संपूर्ण

मुग़ल-सम्राट् हिंदी के हितैषी और संरक्षक थे, यहाँ तक कि कालिदास और कृष्ण कवि-जैसे साहित्य-शास्त्र-निष्णात कवीश्वर औरंगज़ेब बादशाह के दरबारी कवि थे, दूसरी ओर हिंदुत्व की मर्यादा के रक्षक—हिंदू-जाति के रक्षक महाराणा कुंभ, महाराणा प्रताप, महाराणा राजसिंह, छत्रपति शिवाजी, महाराजा छत्रसाल, श्रीगुरुगोविंद-सिंह और महाराजा माधवराव सिंधिया आदि नर-पुंगवों ने इसे हिंदुस्थान की राष्ट्र-भाषा समझकर इसे प्रबल प्रोत्साहन दिया।

द्वितीय कारण यह है कि हिंदू-मुस्लिम-संघर्ष के कारण—दो विभिन्न सभ्यताओं और धर्मों के संघर्ष के कारण—जो एक व्यापक नवीन विचारों की धारा प्रवाहित हुई, उसका संपूर्णतया प्रभाव हिंदी-साहित्य पर पड़ा है। परिवर्तनशील युग के प्रभाव से हिंदी में एक ऐसे नवीन धारा-प्रधान साहित्य की सृष्टि हुई, जो सर्वथा मौलिक है, और जो दोनो जातियों के हृदयों को एक में तल्लीन करने में पर्याप्त समर्थ है।

तृतीय कारण यह है कि हिंदू-मुस्लिम-संघर्ष के कारण पुनः धर्म-भाव की जागृति हुई, और हिंदू-धर्म की रक्षा के हेतु—पवित्र आर्य-सभ्यता की रक्षा के हेतु—सैकड़ों की संख्या में बड़े-बड़े संसार-त्यागी महात्मा हुए, जिन्होंने हिंदू-जाति एवं हिंदू-धर्म की रक्षा तो की ही, साथ-ही-साथ देश के कोने-कोने में पवित्रतम हिंदू-धर्म का संदेश पहुँचा दिया। उन्होंने ज्ञान, योग, वैराग्य, भक्ति एवं उपदेश पर बड़ी ही अनूठी रचनाएँ की हैं। इनके धर्म-ग्रंथ तात्त्विक दृष्टि से संसार के किसी भी धर्म-प्रवर्तक के ग्रंथ से सफलता-पूर्वक टक्कर ले सकते हैं। फिर इनके अनुयायियों में सहस्रों बड़े-बड़े महात्मा और उत्कृष्ट दार्शनिक ग्रंथकार हुए हैं, जिन्होंने अपने आध्यात्मिक बल से जनता को मुग्ध कर दिया एवं असंभव को भी संभव करके दिखला दिया था! नाभादासजी की भक्तमाल एवं उस पर लिखी गई प्रियादासजी

की टीका देखने पर विदित होगा कि वे पूज्य साधु-श्रेष्ठ कैसे महात्मा थे। इनमें से कुछ के नामोल्लेख करना यहाँ असंगत न होगा। श्रीगुरु गोरखनाथ, स्वामी रामानंदजी, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीकबीरदास, श्रीगुरु नानक, श्रीगुरु गोविंदसिंह, श्रीदादूदयाल, श्रीहितहरिवंश, श्रीस्वामी हरिदास, श्रीचरणदास और श्रीप्राणनाथ आदि धर्माचार्य हैं, जिनके उपदेश विश्वपूज्य हैं, और जिनके लक्षावधि अनुयायी आज भी पाए जाते हैं। इन धर्माचार्यों तथा इनके महात्मा शिष्यों ने हिंदी में धार्मिक साहित्य की ख़ूब ही अभिवृद्धि की है। इनके लिखे ग्रंथों की संख्या सहस्रों पर है, जिनमें सैकड़ों अद्वितीय और परम मनोहर हैं। इन्हीं महानुभावों के अनुयायियों में से सूर और तुलसी आदि अनेक धुरंधर विद्वान् ग्रंथकार हुए हैं। इन विश्वपूज्य वंदनीय महात्माओं की वाणी से हिंदी का साहित्य पवित्र होकर निर्मल ज्योति प्रदर्शित कर रहा है।

ऐसी सर्वांगीण, समुन्नत, गौरवशालिनी तथा भाषाओं की बिंदी हिंदी को दीन-हीन कहना दुराग्रह, हठ या अज्ञानता के सिवा और क्या कहा जा सकता है? फिर पिछले पचास वर्षों से हिंदी का साहित्य जिस प्रगति से बढ़ रहा है, उसका भी तो अनुमान कीजिए। हिंदी में संपूर्ण विश्व का साहित्य धड़ल्ले से भरा जा रहा है। इसे देखकर उसका भविष्य भी अतीत के समान समुज्ज्वल जान पड़ता है।

ब्रजभाषा का विशाल साहित्य

हिंदी की प्रधान शाखा ब्रजभाषा ही है, और इसी में हिंदी का गौरव-पूर्ण, अधिकांश साहित्य है। इसमें अनेकानेक महाकाव्य हैं, जिनमें केशवदास का 'रामचंद्रिका-महाकाव्य', चिंतामणि त्रिपाठी-कृत 'रामायण', सबलसिंह चौहान-कृत 'महाभारत', छत्रसिंह-कृत 'विजय-मुक्तावली', रामप्रियाशरण-कृत 'सीतायन', जानकीरसिकशरण-

कृत 'अवधसागर', जोधराज-कृत 'हम्मीर-महाकाव्य', रघुनाथ-कृत 'जगत-मोहन', सरयूराम-कृत 'जैमिनि-पुराण', सूदन-कृत 'सुजान-चरित्र', गोकुलनाथ-गोपीनाथ-मणिदेव-कृत 'भाषा-भारत' और मधुसूदनदास-कृत 'रामाश्वमेध' आदि जैसे सर्वांगीण, उत्कृष्ट, कलामय, विविध ज्ञान-संपन्न महाकाव्य हैं। इनकी गरिमा का पूर्णतया ज्ञान उन्हें ही हो सकता है, जिन्होंने इन ग्रंथों को मनोयोग-पूर्वक देखा है। अन्यान्य भाषाओं में इनकी जोड़ के ग्रंथ-रत्न सर्वथा दुर्लभ हैं।

ब्रजभाषा-साहित्य में खंड काव्यों की भी अच्छी संख्या है। इनमें नरहरि बंदीजन-कृत 'रुक्मिणी-मंगल', नरोत्तमदास-कृत 'सुदामा-चरित्र', पृथ्वीराज-कृत 'श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-चरित्र', मोहनदास-कृत 'रामाश्वमेध', परशुराम-कृत 'ऊषा-चरित्र', रसिकअली-कृत 'मिथिला-विहार', हरनारायण-कृत 'माधवानल-कामकंदला', पद्माकर-कृत 'हिम्मत-बहादुर-विरुदावली', चंद्रशेखर-कृत 'हम्मीर-हठ' और रामनाथ-कृत 'राम-कलेवा' आदि की रचना बड़ी ही मनोहारिणी हुई है।

इन्हीं में हम ब्रजभाषा के कथा-काव्यों की गणना कर सकते हैं। इनकी भी पर्याप्त संख्या है, जिनमें श्रीतुलसीदासजी-कृत 'कवितावली-रामायण', 'गीतावली' और 'कृष्ण-गीतावली', हीरालाल-कृत 'रुक्मिणी-मंगल', मंडन-कृत 'जानकीजू का विवाह', आलम-कृत 'माधवानल-कामकंदला', मुरलीधर-कृत 'नलोपाख्यान' आदि अनेक प्रबंध हैं।

ब्रजभाषा में प्रेम-काव्यों की भी रचना हुई है, जिसका आदर्श पुहकर कवि-कृत 'रस-रतन'-नामक काव्य में है, जिसमें २७६६ छंद तथा ५५६ पृष्ठ हैं।

ब्रजभाषा में वैसे तो धर्म-नीति, समाज-नीति और राजनीति पर विशद छंद बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं, परंतु नरहरि बंदीजन-कृत 'नीति-छप्पय', ख़ानख़ाना नवाब रहीम-कृत 'रहिमन के दोहे',

भरमी-कृत 'स्फुट नीति', बैताल-कृत 'नीति-छप्पय', वृंद-कृत 'वृंद-सतसई', देवीदास-कृत 'राजनीति के छंद' और कोविद कवि-कृत 'राजभूषण' आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इसके सिवा सैकड़ों संसार-त्यागी संतों ने लोक-रक्षा की, लोक-कल्याण की कामना से संसारी जीवों को जो अमूल्य उपदेश दिया है, उसका उत्कृष्ट वर्णन ब्रजभाषा में भरा पड़ा है। इनके अतिरिक्त संस्कृत के 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' एवं भर्तृहरि के नीति-शतक आदि-जैसे उत्तम ग्रंथों का अनुवाद तो ब्रजभाषा में है ही। ब्रजभाषा में वेदांत और योग के ग्रंथों का भी बाहुल्य है। इनमें केशवदास-कृत 'विज्ञान-गीता', सुंदरदास दादूपंथी-कृत 'सुंदर-विलास', 'ज्ञान-विलास', 'विवेक-चिंतामणि', 'सुंदर-सांख्य', कवींद्राचार्य-कृत 'योग-वासिष्ठसार', कविराज सुखदेव मिश्र-कृत 'अध्यात्मप्रकाश', अक्षरअनन्य-कृत 'ज्ञान-योग', 'सिद्धांत-बोध', 'योगशास्त्र-स्वरोदय', 'ब्रह्मज्ञान', 'विवेकदीपिका', 'अनुभव-तरंग' और 'राजयोग', देवदत्त-कृत 'योगतत्त्व', अनाथदास-कृत 'सर्वसार-उपदेश', चरणदास-कृत 'अष्टांगयोग' और 'ज्ञान-स्वरोदय', प्रियादास-कृत 'उपनिषद्-सार' आदि ग्रंथ-रत्न हैं। इनके सिवा उपनिषदों के भी अनुवाद हैं। गीता पर भी अनेक गद्य-पद्यानुवाद हैं। साथ ही श्रीगुरु गोरखनाथ, श्रीकबीरदास, श्रीगरीब-दास, श्रीचरणदास, श्रीमलूकदास आदि पंथ-प्रवर्तक संतों और उनके अनुयायियों की विशद वाणियों की बहुलता है। इनमें श्रीनिश्चलदास कृत 'वृत्ति-रत्नाकर', 'विचार-सागर' और 'युक्ति-प्रकाश'-जैसे अनेक अनूठे, अद्वितीय दार्शनिक ग्रंथ हैं, जिनकी समता की रचनाएँ संसार में केवल संस्कृत-साहित्य में ही प्राप्त हो सकती हैं। फिर धार्मिक साहित्य की तो ब्रजभाषा में ऐसी प्रचुरता है, जैसी संस्कृत-साहित्य को छोड़कर अन्य कहीं स्वप्न में भी संभव नहीं। इनमें अनेक पंथों और संप्रदायों के सिद्धांतों और आचारों

पर एवं भक्ति, योग, वैराग्य आदि पर सैकड़ों उत्कृष्ट मौलिक ग्रंथ और श्रेष्ठतम संस्कृत-ग्रंथों के अनुवाद हैं। भक्ति-निरूपण पर ब्रजभाषा-साहित्य संसार में अद्वितीय ही प्रमाणित हुआ है, और होता रहेगा।

पूज्य पुराण-ग्रंथों के श्रेष्ठतम अनुवाद ब्रजभाषा-साहित्य में भरे पड़े हैं। इस बात के लिये दामोदर कवि-कृत 'मार्कंडेय-पुराण', सरयूराय-कृत 'जैमिनि-पुराण', सदासुख-कृत 'विष्णु-पुराण', जयराम-कृत 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' आदि-आदि अनेक ग्रंथ हैं। भागवत-पुराण, देवी-पुराण, सूर्य-पुराण, शिव-पुराण, देवी-भागवत आदि के अनेक सरस अनुवाद ब्रजभाषा-साहित्य की शोभा बढ़ाते हैं।

ब्रजभाषा-साहित्य के कोष में भिन्न-भिन्न विषय के ग्रंथों की भी कमी नहीं। इनमें प्रकृति-वर्णन, ऋतु-वर्णन, पक्षी-वर्णन, गज-वर्णन, अश्व-वर्णन, रत्नों की परख, आयुर्वेद, बाग़बानी, गणित, इतिहास, ज्योतिष्, कोष, आख्यायिकाएँ आदि की मनोहर, सर्वांग-सुंदर रचनाओं से परिपूर्ण ग्रंथों की प्रचुरता है। इनमें से कुछ ये हैं—पृथ्वीराज-कृत 'प्रेम-दीपिका', चेतनचंद्र-कृत 'अश्व-विनोद शालिहोत्र', ताहिर-कृत 'कोकशास्त्र', बासीराम-कृत 'पक्षी-विलास', सेनापति-कृत 'षड्ऋतु', बलभद्र-कृत 'वैद्य-विद्या-विनोद', रायचंदनागर-कृत 'लीलावती', सुदर्शन-कृत 'चिकित्सा-दर्पण' और 'भिषक्प्रिया', लालदास-कृत 'इतिहास-सार-समुच्चय', गंगाधर-कृत 'विक्रम-विलास', नंददास-कृत 'अनेकार्थ' और 'नाममाला', कल्याण मिश्र-कृत 'अमरकोष', रतनभट्ट-कृत 'सामुद्रिक', श्रीधर-कृत 'संगीत-सार', टेकचंद-कृत 'वृत्तकथाकोष', प्रेमीवमन-कृत 'अनेकार्थनाममाला', माधवदास-कृत 'मुहूर्तचिंतामणि', स्वामी मथुरानंद-कृत 'पातंजलियोग' और गुरुदत्त-कृत 'पक्षी-विलास'। इनमें से कुछ मौलिक और कुछ स्वतंत्र रूप से अनुवादित ग्रंथ हैं।

जीवन-चरित्रों और उपदेश-पूर्ण कथा-वार्ताओं से भी ब्रजभाषा

का साहित्य अलंकृत है। इनमें अधिकांश में उज्ज्वलतम चरित्रवाले पौराणिक महापुरुषों के चरित्रों की अनूठी भावमयी अवतारणा की गई है। इनकी संख्या सैकड़ों पर है। फिर तत्कालीन महात्माओं और महापुरुषों के जीवन-चरित्र भी मौजूद हैं। इनमें चरित्र-सुधार और भावना-परिष्कार का चमत्कार सर्वथा अनूठा और हृदय-ग्राही है। आधुनिक काल के उच्छृंखलता-प्रिय सज्जन इन्हें पसंद भले ही न करें, पर संसार का कल्याण करने में ये आदर्श ग्रंथ बड़े ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

ब्रजभाषा-साहित्य में इतिहास-ग्रंथों की भी प्रचुर सामग्री है। जहाँ ऐतिहासिक व्यक्तियों पर काव्य-ग्रंथ और स्फुट प्रामाणिक रचनाएँ प्राप्त होती हैं, वहाँ सूर्यमल्ल चारण-कृत 'वंश-भास्कर'-जैसा इतिहास-ग्रंथ भी है, जो ४३६८ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। इनमें हम अनेक ऐतिहासिक पुरुषों और उनके काल का सच्चा वर्णन पाते हैं।

राष्ट्रीय एवं जातीय साहित्य का भी ब्रजभाषा में ज़ोर रहा है। इस विभाग में बनवारी, हरिकेश, भूषण, लाल, सूदन, चंद्रशेखर आदि की रचनाएँ दर्शनीय हैं। इनसे विदित होता है कि किसी राष्ट्र के उत्थान में जातीय और राष्ट्रीय समर्थ कवियों की जीवनदायिनी सजीव वाणी कितना उपकार करती है! यद्यपि समय समय पर राष्ट्रीयता का रुख़ बदलता रहता है, पर तत्कालीन राष्ट्रीय और जातीय भावनाओं का जैसा उदात्त, सजीव, महत्त्व-पूर्ण वर्णन इन राष्ट्रीय कवीश्वरों की वाणियों में प्राप्त होता है, वह सर्वथा अप्रतिम ही है। जिस प्रकार आधुनिक काल में प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं और उनके आदर्श कार्यों का अपार गुण-गान किया जाता है, उसी प्रकार उससे शतगुणित श्रेष्ठ ढंग से ब्रजभाषा के समर्थ लेखकों और कवियों ने हिंदू-जाति के संरक्षक महान् राष्ट्रीय वीर पुरुषों—जैसे शिवाजी, छत्रसाल और हम्मीर आदि—के चरित्रों और उनके आदर्शों का

गान अपनी ओजमयी, जीवनदायिनी रचना में प्रचुर परिमाण में किया है।

इस साहित्य के सिवा ब्रजभाषा में जो स्फुट छंद-रचना—मुक्तकों और पदों—का विशाल, गौरवमय विभाग है, वह तो सर्वथा प्रशंसनीय और संसार-साहित्य में उच्चातिउच्च सिंहासनारूढ़ होने के योग्य संपूर्ण गुणों से अलंकृत, सर्व-श्रेष्ठ कलामय है ही। इन स्फुट छंद-रचयिताओं ने संपूर्ण मनोरंजक और जीवनोपयोगी विषयों पर उत्कृष्ट रचना की है। इनमें सैकड़ों धुरंधर विद्वान्, प्रतिभाशाली उद्भट आचार्य और महाकवि हुए हैं, जिनमें सूर, हितहरिवंश, मीरा, कबीर, नंददास, नागरीदास, ध्रुवदास, बिहारी, मतिराम, दास, रहीम, केशव, सेनापति, हरिश्चंद्र आदि प्रधान हैं। यह यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री जाति के ६०० वर्ष के इतिहास को और उसकी भावनाओं को अपने अंक में लिए है। साथ ही यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि सैकड़ों माननीय कवीश्वरों ने ब्रजभाषा के काव्य-साहित्य को उन्नति के चरम शिखर पर प्रतिष्ठित करने में कुछ उठा नहीं रक्खा।

नाटक-साहित्य पर भी ब्रजभाषा के मनीषी लेखकों ने क़लम उठाई थी। इनमें भी हरिराम-कृत जानकीराम-चरित्र-नाटक, प्राणचंद्र-कृत रामायण-महानाटक और शंकरदत्त-कृत हरिवंश-हंस-नाटक आदि के सिवा राम-लीला और रास-लीला-विषयक अनेक ग्रंथ-रत्न हैं, जिनमें यथेष्ट नाटकत्व है। ब्रजभाषा के नाटक-साहित्य ने चार सौ वर्षों से हिंदुस्थान के लोगों का मनोरंजन किया है, और उसके अंक में भारतेंदु हरिश्चंद्र-कृत चंद्रावली-नाटक-जैसा उत्कृष्ट अभिनय-योग्य ग्रंथ भी है, जो काव्य, चरित्र एवं मनोभावों के यथार्थ उतार-चढ़ाव के कलामय वर्णन की दृष्टि से अत्यंत उच्च कोटि का है। रुचि-भेद और समय की प्रगति से हम उन्हें भले ही न चाहें, पर उनकी निंदा करना हमारी अज्ञानता और तुच्छता ही होगी।

ब्रजभाषा के उच्च कोटि के साहित्य से संपन्न होने में उसके रीति-ग्रंथकार साहित्याचार्यों ने भी बड़ी सहायता पहुँचाई है। ये महानुभाव जहाँ एक ओर अपनी उत्कृष्ट रचनाओं से ब्रजभाषा का भांडार भर रहे थे, वहाँ दूसरी ओर रीति-ग्रंथ लिखकर दूसरों को उचित और श्रेयस्कर काव्य-पथ दिखला रहे थे। रीति-ग्रंथ पर सैकड़ों ही ऐसे उत्तमोत्तम ग्रंथ हैं, जैसे संस्कृत को छोड़ संसार की अन्य किसी भी भाषा में प्राप्त नहीं हो सकते। इनमें केशवदास-कृत 'कवि-प्रिया' और 'रसिक-प्रिया', चिंतामणि त्रिपाठी-कृत 'छंद-विचार', 'काव्य-विवेक', 'कवि-कुल-कल्पतरु' और 'काव्यप्रकाश', तोष-कृत 'सुधानिधि', मतिराम-कृत 'ललित ललाम', 'छंदसार-पिंगल' और 'रसराज', कुलपति मिश्र-कृत 'रस-रहस्य', सुखदेव मिश्र-कृत 'वृत्त-विचार', 'छंद-विचार' और 'रसार्णव', देव कवि-कृत 'सुजान-विनोद', 'भावविलास', 'भवानीविलास' और 'काव्य-रसायन', उदयनाथ कवींद्र-कृत 'रसचंद्रोदय', श्रीपति-कृत 'काव्य-सरोज' और 'कवि-कल्पद्रुम', भिखारीदास-कृत 'छंदार्णव-पिंगल', 'काव्य-निर्णय' और 'शृंगार-निर्णय' कुमारमणि भट्ट-कृत 'रसिक-रसाल', दत्तकवि-कृत 'लालित्य-लता', रघुनाथ-कृत 'काव्य-कलाधर' और 'रसिकमोहन', दूलह कवि-कृत 'कवि-कुल-कंठाभरण', वासीराम-कृत 'काव्य-प्रकाश' और 'रस-गंगाधर' की टीकाएँ, रूपसाहि-कृत 'रूपविलास', वैरीसाल-कृत 'भाषा-भरण', देवकीनंदन-कृत 'अवधूत-चरित्र', महाराज रामसिंह-कृत 'अलंकार-दर्पण' और 'रसनिवास', जसवंतसिंह-कृत 'शृंगार-शिरोमणि', करनकवि-कृत 'रस-कल्लोल', पद्माकर-कृत 'जगद्विनोद' और 'पद्माभरण', प्रतापसाहि-कृत 'व्यंग्यार्थ-कौमुदी' और 'काव्य-विलास' तथा बलवान-सिंह-कृत 'चित्र-चंद्रिका', जसवंतसिंह-कृत 'भाषा-भूषण', सोमनाथ-कृत 'रस-पीयूष-निधि', रसलीन-कृत 'रस-प्रबोध' और दलपतिराय-वंशीधर-कृत 'अलंकार-रत्नाकर' आदि सैकड़ों उत्तमोत्तम ग्रंथ हैं। संस्कृत-

साहित्य के धुरीण मर्मज्ञ, साहित्य-शास्त्र-निष्णात और उद्भट साहित्याचार्य पंडितराज जगन्नाथ ने अपने सुप्रसिद्ध रीति-ग्रंथ 'रस-गंगाधर' में अपने ग्रंथ को अन्यान्य ग्रंथों से विशेष दिखलाते हुए लिखा है—

"निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं
काव्यं मयाऽत्र निहितं न परस्य किञ्चित् ;
कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण
किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गंधः।"

अर्थात्, "मैंने इस ग्रंथ में उदाहरणों के अनुरूप काव्य बनाकर रक्खा है, दूसरे से (उदाहरण-स्वरूप) कुछ भी नहीं लिया, क्योंकि कस्तूरी उत्पन्न करने की शक्ति रखनेवाला मृग क्या पुष्पों की सुगंध की तरफ़ मन भी लाता है? अपनी सुगंध से मस्त उसे क्या परवा है कि वह पुष्पों की गंध की याद करे?"

पंडितराज जगन्नाथ ने अपने स्वयंनिर्मित उदाहरण रखने पर जो यह गर्वोक्ति लिखी है, वह यथार्थ ही है। पर ब्रजभाषा-साहित्य के प्रायः संपूर्ण रीति-ग्रंथकारों ने अपने रीति-ग्रंथों में स्वयंरचित उदाहरण रक्खे हैं। यह विशेषता इतने बड़े परिमाण में और ऐसी उत्कृष्टता से केवल ब्रजभाषा-साहित्य में ही मिल सकती है। संसार के अन्य संपूर्ण साहित्यों से इस विषय में ब्रजभाषा-साहित्य बहुत चढ़ा-बढ़ा है। इस विषय में उसकी अपनी विशेषता अप्रतिम है।

ब्रजभाषा में नवीन प्रगति

हर्ष का विषय है, भारतेंदु के बाद ब्रजभाषा पर जो आपत्ति के बादल छा गए थे, वे अब धीरे-धीरे हट रहे हैं। भारतेंदु के बाद हम ब्रजभाषा-साहित्य की रचना का ह्रास देखते हैं। यद्यपि उसमें पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राय देवीप्रसादजी 'पूर्ण', श्रीबालमुकुंद गुप्त, पं० श्रीधर पाठक, श्रीसत्यनारायण 'कविरत्न', पं० नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर', श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर', श्रीसनेहीजी,

पं० रामचंद्र शुक्ल, श्रीवियोगी हरि, श्रीअजमेरीजी, पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, प्रो० रामदासजी गौड़ आदि की उत्कृष्ट रचनाएँ हुई अवश्य, पर पत्रकारों एवं खड़ी बोली के प्रचारकों ने संघटित आंदोलन करके ब्रजभाषा का विरोध किया, जिससे ब्रजभाषा दब-सी गई थी। पर हिंदी-साहित्य में श्रीदुलारेलालजी भार्गव के सराहनीय प्रयत्न से, माधुरी के निकलते ही, ब्रजभाषा की लता पुनः लहलहाने लगी। यद्यपि यह सत्य है कि अनेक विद्वान् ब्रजभाषा-सेवियों ने इधर भी ब्रजभाषा की श्री-वृद्धि करने में विशेष योग दिया है, पर श्रीदुलारेलालजी का प्रयत्न अनेक कारणों से इन सबकी अपेक्षा अधिक महत्त्व-पूर्ण रहा है। कारण, आप ब्रजभाषा-साहित्य के प्रचारक तथा प्रकाशक ही नहीं, श्रेष्ठ कलाकार भी हैं। साथ ही आप खड़ी बोली के भी वैसे ही समर्थक हैं। अतएव आप हिंदी-माता के ऐसे सपूत हैं, जो प्राचीन और नवीन दोनो धाराओं के ज़बर्दस्त हिमायती और प्रचारक हैं। आप हिंदी के उन महानुभावों में से हैं, जो रात-दिन लगन के साथ राष्ट्र-भाषा हिंदी के उत्थान में सतत प्रयत्नशील रहते हैं।

३ दुलारे-दोहावली और उसके रचयिता

कविवर श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीदुलारेलालजी भार्गव का जन्म लखनऊ के सुप्रसिद्ध, सुप्रतिष्ठित, धनी भार्गव-कुल के यशस्वी श्रीमान् प्यारेलालजी के यहाँ हुआ था। आप उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपका लालन-पालन उर्दू के अजेय दुर्ग लखनऊ में हुआ। जिस नवलकिशोर-प्रेस ने उर्दू-फ़ारसी की ४००० पुस्तकें प्रकाशित की हैं, वहीं आपका बचपन बीता है। पर आपसे तो हिंदी की अक्षय सेवा का कार्य होना था। यद्यपि आपका परिवार उर्दू की ओर प्रभावित था, पर आपने अपने बालपन में ही अपना एक निश्चित मार्ग ग्रहण कर लिया था। आपकी माताजी तुलसी-कृत

रामायण और पुराणों का नियमित रूप से पाठ किया करती थीं। इसलिये उनके हिंदी-प्रेम से प्रभावित होकर इनको हिंदी के प्रति बाल्यकाल से ही अनुराग हो गया था, और आप उनकी अनुपस्थिति में उनके ग्रंथ चुपचाप पढ़ा करते थे। यह हिंदी-प्रेम अवस्थानुसार धीरे-धीरे बढ़ता गया। आप स्कूल और कॉलेज में अध्यापकों द्वारा उच्च कोटि के प्रतिभाशाली विद्यार्थी समझे जाते थे। दर्जे में प्रथम आने के कारण आपको अनेक छात्रवृत्तियाँ (वज़ीफ़े) और स्वर्ण-पदक मिले। अँगरेज़ी में प्रांत-भर में प्रथम आने के कारण आपको नेस्फ़ील्डड*-स्कालरशिप भी मिला। आपकी अँगरेज़ी इतनी अच्छी थी कि आपके शुभचिंतकों की इच्छा थी कि आप आई० सी० एस्० पास करके गवर्नमेंट के ऊँचे-से-ऊँचे पद ग्रहण करें।

किशोरावस्था में पदार्पण करते ही आपका विवाह अजमेर के प्रसिद्ध रईस श्रीमान् फूलचंदजी भार्गव, जज की सुपुत्री श्रीगंगादेवी से हुआ। हमारे होनहार महाकवि को श्रीगंगादेवी के रूप में बाह्य और आभ्यंतर सौंदर्य-निधि की प्राप्ति हुई थी। कहते हैं, इस स्वर्गीया देवी को जैसा अपार सौंदर्य मिला था, वैसा ही हृदय-सौंदर्य भी। ऐसा मणि-कांचन-संयोग बिरले ही पुण्यवान्, भाग्यशाली मनुष्य को प्राप्त होता है। इन देवी में अनेक गुणों के साथ-साथ हिंदी के अनन्य प्रेम का सबसे बड़ा गुण था। इस सत्संग को पाकर दुलारेलालजी की हिंदी-हित की कामना-बेलि दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी, और आपने अपने सोलहवें वर्ष में भार्गव-पत्रिका का संपादन-भार अपने कोमल कंधों पर ले लिया। आपके संपादन के पूर्व भार्गव-पत्रिका उर्दू में निकलती थी, पर आपके हाथ में आते ही वह राष्ट्र-भाषा हिंदी में निकलने लगी। उसमें हिंदी के अच्छे-अच्छे कवि और लेखक भी लेख देते थे।

---

* युक्तप्रांत में कभी यह शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर थे। इनकी लिखी अँगरेज़ी-व्याकरण प्रसिद्ध है।

दुर्दैव-वश दो ही तीन मास पति के साथ रहकर सौभाग्यवती श्रीगंगादेवी परलोक सिधारीं। इस आघात से दुलारेलालजी की जीवन-धारा में एक महत् परिवर्तन हो गया। नवलकिशोर-प्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष रायबहादुर श्रीमान् प्रयागनारायणजी भार्गव, जो आपके बाबा * होते थे, और भार्गव-परिवार में सबसे ज्येष्ठ थे, आपसे बड़ा स्नेह रखते थे। वह अपने परिवार का इनको उज्ज्वलतम रत्न समझते थे। उनकी भी इच्छा थी कि आप आई० सी० एस्० पास करने के लिये विलायत जायँ, किंतु आपने सरकारी नौकरी करना बिलकुल पसंद नहीं किया, और अपनी प्राणेश्वरी पत्नी की इच्छा की पूर्ति के लिये हिंदी की महान् सेवा करने का बीड़ा उठाया। श्रीमती गंगादेवी अपना पांचभौतिक तन त्यागकर, पति की आत्मा में लीन होकर हिंदी का इतना भारी उपकार करेंगी, यह कौन जानता था? प्रेमी हृदय पर इस घटना का यह प्रभाव पड़ा कि दुलारेलालजी उसी समय से अविवाहित रहकर हिंदी-सेवा में निरत हैं। पत्नी के प्रति पति का ऐसा प्रगाढ़ प्रेम बीसवीं सदी में बहुत कम देखने में आता है। अगर वह आई० सी० एस्० होकर विलायत से लौटते, तो किसी ज़िले में पड़े दिन काटते, और हिंदी उनकी इस अमूल्य सेवा से वंचित ही रह जाती! अस्तु।

आपने अपनी सती-साध्वी धर्मपत्नी स्वर्गीया गंगादेवी के मरणोपरांत उनकी पुण्य स्मृति में, वसंत-पंचमी के दिन, 'गंगा-पुस्तक-माला' प्रारंभ की। इस माला का पहला पुष्प था माला के संपादक, संचालक और स्वामी श्रीदुलारेलालजी-रचित 'हृदय-तरंग'-नामक ग्रंथ। इसे आपने अपनी स्वर्गीया प्रिय पत्नी को समर्पित किया।

---

* आपके परबाबा श्रीमान् फूलचंदजी के श्रीमान् नवलकिशोरजी सी० आई० ई० छोटे भाई थे। सो नवलकिशोरजी के पुत्र श्रीमान् प्रयागनारायणजी आपके बाबा होते थे।

इसके बाद तो फिर 'गंगा-पुस्तकमाला' में राष्ट्र-भाषा हिंदी का गौरव बढ़ानेवाली प्रत्येक विषय की श्रेष्ठ पुस्तकें निकलीं, जिनसे हिंदी-साहित्य की विशेष श्रीवृद्धि हुई है। इन सब पुस्तकों को आपने स्वयं ही घोर परिश्रम से संपादित करके सुंदरता से प्रकाशित किया है। इसी के साथ-साथ हिंदी के इस यशस्वी सपूत ने अपने प्रिय बालसखा और चचा श्रीविष्णुनारायणजी भार्गव के सहयोग से 'माधुरी' को निकालकर तथा उसका सुचारु रूप से संपादन करके हिंदी की गति-विधि ही बदल दी। उसी समय से हिंदी के मासिक साहित्य में अभूतपूर्व सुधार हुआ, जिसका भारी श्रेय श्रीदुलारेलालजी को है। 'माधुरी' को योग्य हाथों में सौंपने के बाद हिंदी के इस लाड़ले लाल ने 'सुधा'-पत्रिका को जन्म दिया। सुधा का संपादन भी आपने अपने ही हाथों में रक्खा, और आज तक आप ही के हाथों में है। सुधा हिंदी-संसार की प्रथम श्रेणी की पत्रिकाओं में अग्रगण्य रही है, और है। इसका संपादन उच्च कोटि का होता है। इन दोनो सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं के संपादन में आप जहाँ प्राचीन, प्रतिष्ठित साहित्य-सेवियों का सम्मान करते आए हैं, वहाँ नवीन, योग्य साहित्य-सेवियों को प्रबल प्रोत्साहन भी देते आए हैं। अनेक युवक युवतियों को बढ़ावा दे-देकर आपने उनसे लेख और ग्रंथ लिखवाए हैं। इस प्रकार आपने जहाँ स्वयं हिंदी की सेवा की है, वहाँ दूसरों से भी हिंदी-सेवा का कार्य लिया है, सैकड़ों लेखक-लेखिकाओं को साहित्य-साधना का सुंदर मार्ग दिखाया है। इनके समान हिंदी-हितैषिता बिरले लोगों में ही मिलेगी, फिर इतनी सेवा तो दुर्लभ है।

यद्यपि आपने खड़ी बोली में भी सुंदर, रसीली, भाव-पूर्ण कविता की है, पर आपकी कविता प्रधानतया ब्रजभाषा में मुक्तकों के रूप में ही देखी गई है। अब आपकी कविता के विषय में कुछ लिखने के पूर्व मैं आपके संपादन तथा प्रकाशन-कार्य की प्रशंसा के विषय में कुछ अग्रगण्य विद्वानों की सम्मतियाँ उपस्थित करता हूँ—

सुप्रसिद्ध हिंदी-हितैषी डॉक्टर सर जॉर्ज ग्रियर्सन के० सी० एस्० आई०, पी-एच्० डी० महोदय—

"A new series of editions of Hindi classical works has lately been projected under the title of the Sukavi Madhuri Mala. The general editor of the series is Shri Dulareylal Bhargava well-known in Northern India as the Editor-in Chief of the excellent Hindi Magazine, the Sudha. In this series he proposes to offer to the public critically prepared editions of the master pieces of Hindi Literature with careful and full commentaries.

The publisher and the general editor may be congratulated on beginning this series so auspiciously and it is to be hoped that the other works to be included in it will reach the same standard of scholarship."

संस्कृत के प्रकांड विद्वान् प्रोफ़ेसर रामप्रतापजी शास्त्री (नागपुर-विश्वविद्यालय के संस्कृत-हिंदी-प्राकृत-पाली-विभाग के अध्यक्ष)—

"The Ganga Pustak Mala Karyalaya is one of the best Publishing Institutions in India. It has played an important part in the evolution of modern Hindi Literature.

It has recently made tremendous progress under the efficient management of its young and energetic Proprietor Mr. Dulareylal Bhar-

gava, an accomplished Poet, Prose-writer and the Editor of the best Hindi Monthly '*Sudha*'.

Mr. Dulareylal Bhargava has undoubtedly laid the Hindi-speaking world under a deep debt of gratitude by his selfless services and he will go down to posterity as the most successful Publisher. He has revolutionised Hindi printing and publishing in so short a time."

आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—बहुत-सी महत्त्व-पूर्ण और मनोरंजक पुस्तकें प्रकाशित करके गंगा-पुस्तकमाला के मालिक हिंदी-साहित्य की अभिवृद्धि में विशेष सहायक हुए हैं। उनके पुस्तक-प्रकाशन का यह क्रम यदि इसी तरह चलता रहा, तो भविष्य में यह अभिवृद्धि अधिकाधिक वृद्धिगत होती रहेगी।

सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक और कवि श्रीमान् 'मिश्रबंधु'—आपसे हिंदी का जैसा उपकार हुआ और हो रहा है, वैसा भारतेंदु हरिश्चंद्र के पीछे केवल इने-गिने महानुभावों द्वारा हो सका है। हम आशा करते हैं कि आगे चलकर आप हिंदी का और भी विशेष हित-साधन कर सकेंगे।

छायावाद के श्रेष्ठ कवि पं० सूर्यकांतजी त्रिपाठी 'निराला'—श्रीदुलारेलालजी भार्गव ने हिंदी की जो सेवा की है, उसका मूल्य निर्द्धारित करना मेरी शक्ति से बिलकुल बाहर है। 'माधुरी' और 'सुधा' में बराबर आप नवीन लेखकों को प्रोत्साहित करते रहे हैं, कितनी ही महिला-लेखिकाएँ तैयार कीं। यह क्रम हिंदी की किसी भी पत्रिका में नहीं रहा। इस प्रोत्साहन-कार्य में भार्गवजी का स्थान सबसे पहले है। लखनऊ-जैसे उर्दू के क़िले में इस तरह हिंदी का विशाल प्रासाद खड़ा कर देना कोई साधारण-सी बात नहीं थी।

इसके लिये कितना परिश्रम तथा कितना अध्यवसाय चाहिए, यह मर्मज्ञ मनुष्य अच्छी ही तरह समझ लेंगे !

हिंदी के सर्वश्रेष्ठ गद्य-लेखक आचार्य चतुरसेनजी शास्त्री—भार्गवजी आधुनिक हिंदी के दुलारे-युग के प्रवर्तक, ब्रजभाषा के सर्व-श्रेष्ठ कवि, सफल संपादक, लोकप्रिय प्रकाशक तथा सुप्रसिद्ध मुद्रक हैं। आप देव-पुरस्कार के सर्वप्रथम विजेता हैं। गंगा-पुस्तकमाला, माधुरी, सुधा, गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, गंगा-ग्रंथागार, गंगा-कैलेंडर-मैनु-फ़ैक्चरिंग-कंपनी आदि के संस्थापक हैं। गत कुछ वर्षों के अल्प काल में ही आपने हिंदी की जैसी उन्नति कर दिखाई है, वह बेजोड़ है। आपके काव्य-ग्रंथ 'दुलारे-दोहावली' पर जितनी आलोचना-प्रत्या-लोचना हिंदी में हुई है, उतनी हिंदी के इतिहास में, इतने थोड़े समय में, किसी भी ग्रंथ पर नहीं हुई। यही कारण है कि थोड़े काल में ही उसके अनेक संस्करण हो चुके हैं। आप लखनऊ के सुप्रसिद्ध श्रीनवल-किशोर सी० आई० ई० के वंश के हैं, जिन्होंने हिंदी-साहित्य की अनुपम सेवा करके और उसी की बदौलत एक करोड़ रुपया पैदा करके अपना जन्म धन्य और जीवन अमर कर लिया। आजकल दुलारेलालजी फ़िल्म-कंपनी और इंश्योरेंस-कंपनी खोलने का आयोजन कर रहे हैं।

आप अनेक बार अनेक सभाओं और समाजों द्वारा निमंत्रित होकर सभापति का पद सुशोभित कर चुके हैं। संयुक्तप्रांतीय साहित्य-सम्मेलन के सप्तमाधिवेशन के सभापति के पद से आपने गुरुकुल कांगड़ी में जो भाषण किया था, वह महत्त्व-पूर्ण है। आपका सिंध-साहित्य-सम्मेलन का संभाषण भी हिंदी की हित-कामना से ओत-प्रोत एवं सुंदर हुआ है। ग्वालियर-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर अखिल भारतीय हिंदी-कवि-सम्मेलन ने आपकी कविता पर मुग्ध होकर उपस्थित कवियों में आपको प्रथम पुरस्कार दिया, जिसे आपने स्वयं न लेकर पं० पद्मकांतजी

मालवीय को, जिनका नंबर दूसरा था, दिलवा दिया। प्रयाग में, द्विवेदी-मेला के समय, हास्य-परिहास के रंगमंच पर, अनेक कटाक्षों के उत्तर में आपकी मीठी हास्यमयी रचना ने सब उपस्थित सज्जनों को प्रसन्न किया था। उससे प्रकट होता है कि आप समय पर, तुरंत ही, मनोहर, चुटीली रचना करने में भी समर्थ हैं। हिंदू-विश्वविद्यालय, लखनऊ-विश्वविद्यालय आदि शिक्षा-संस्थाओं में भी कवि-सम्मेलन और वाद-विवादों में सभापति का भार वहन करते हुए आप विद्यार्थियों में हिंदी-प्रेम जाग्रत् करते रहे हैं। सप्तम संयुक्त-प्रांतीय कवि-सम्मेलन के सभापति का पद भी आप मेरठ में सुशोभित कर चुके हैं। परसाल कलकत्ता पधारने पर वहाँ के साहित्य-सेवियों ने आपका अभिनंदन किया था। आप प्रकृति से पर्यटनशील हैं। काश्मीर, पंजाब, राजपूताना, सी० पी०, यू० पी०, बुंदेलखंड, मध्य-भारत आदि आपका खूब घूमा हुआ है। इससे आपका अनुभव बहुत बढ़ा है, जो एक सुकवि के लिये अपेक्षित है। निकट भविष्य ही में आपका योरप, अमेरिका और जापान जाने का विचार है। आप मिलनसार और प्रेमी सज्जन हैं। आपके सामाजिक विचार अत्यंत उदार हैं। न तो आप प्राचीन भारतीय सभ्यता का सर्वथा नाश ही चाहते हैं, और न प्राचीनता की रूढ़ियों से जकड़े रहकर प्रगतिशील समय से सर्वथा पीछे रह जाना ही पसंद करते हैं। तात्पर्य यह कि आप प्राचीन और नवीन का ऐसा समन्वय चाहते हैं, जो विश्व-कल्याण-कारी हो। आप विभिन्न विचार-प्रणालियों को मानव-जीवन के विकास के लिये श्रेयस्कर समझकर उन सबका आदर करते हैं। आप जाति-पाँति में विश्वास नहीं रखते। सांप्रदायिकता से भी आप दूर रहते हैं। सुधा और गंगा-पुस्तकमाला के संपादन तथा प्रकाशन और गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस तथा गंगा-ग्रंथागार के संचालन से अवकाश मिलने पर, स्फूर्ति होने पर, आप काव्य की रचना भी

करते आए हैं। आप थोड़ा, किंतु अच्छा लिखने की नीति के क़ायल हैं।

दुलारे-दोहावली

कविवर पं० दुलारेलालजी भार्गव की इस श्रेष्ठ रचना 'दुलारे-दोहावली' में सब मिलाकर दो सौ आठ दोहे हैं। प्रारंभ में, प्रार्थना-शीर्षक में, आठ दोहे हैं। इसके बाद मुख्य ग्रंथ प्रारंभ होता है। इन दोहा-रत्नों को कवि ने यत्र-तत्र बिखेरकर रक्खा है।

'दुलारे-दोहावली' जिस रचना-प्रणाली पर लिखी गई है, उसके अनुसार यह साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से एक 'कोष' है, जिसमें २०८ दोहा-रत्न यत्र-तत्र अपने ही आपमें पूर्ण रहकर अपनी कमनीय कांति प्रदर्शित कर रहे हैं। साहित्य-शास्त्र में विवेचकों ने ऐसे 'पद्य-रत्न' को 'मुक्तक' कहा है। पद्यात्मक काव्य के प्रधानतया दो भेद हैं—(१) प्रबंध-काव्य और (२) मुक्तक-काव्य। प्रबंध-काव्य में कवि एक विस्तृत कथानक का आश्रय लेकर काव्य-रचना करने के लिये एक विशाल क्षेत्र चुन लेता है। उसे काव्य-सामग्री को एक विस्तृत क्षेत्र में यथास्थान भर देने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। उसका काम अभिधा से निकल जाता है, और कथानक की रोचकता के कारण उसमें मनोरमता रहती है। मुक्तककार का क्षेत्र बहुत ही संकीर्ण रहता है, उसी में उसे अपना संपूर्ण कथानक ध्वनि से, गंभीर अर्थ-पूर्ण शब्दों में, झलकाना पड़ता है। जहाँ प्रबंध-काव्य में छंद शृंखला-संबद्ध रहने के कारण आगे-पीछे के पद्यों का सहारा लेकर अपनी रक्षा कर सकते हैं, वहाँ मुक्तक-छंद को स्वतंत्र रूप से एकाकी रहकर अपना गौरव पूर्ण प्रबंध के सामने स्थापित करना पड़ता है। इसी-लिये खंड काव्य, महाकाव्य आदि लिखने की अपेक्षा मुक्तक लिखना महत्त्व-पूर्ण है।

यह सत्य है कि मुक्तक की रचना काव्य-कला-कुशलता का चरम

आदर्श है। एक पूरे प्रबंध (ग्रंथ) में कवि को विस्तृत कथानक का आश्रय लेकर रस-स्थापना का जो कार्य करना पड़ता है, वही कार्य एक छोटे-से मुक्तक में कर दिखाना विलक्षण काव्य-रचना-सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है। कथानक का विस्तृत वर्णन न करके अर्थात् उसका आश्रय न लेकर एक छोटे-से छंद में इतना रस भर देना कि रसिक अगली-पिछली कथा का आश्रय लिए बिना ही उसके आस्वादन से तृप्त हो जाय, सचमुच में असाधारण प्रतिभा का काम है। एक ही स्वतंत्र पद्य में विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से परिपूर्ण रस का सागर लहराना, एक संपूर्ण आख्यायिका को थोड़े-से ध्वन्यात्मक शब्दों में भर दिखाना, कथन-शैली में एक निराला बाँकपन—एक निराला चमत्कार पैदा करना, उपमान-उपमेयों द्वारा समान दृश्य दिखलाकर भाव-साधर्म्य अथवा भाव-वैधर्म्य के आलंकारिक वेष को सजाना और सबके ऊपर देश-काल-पात्र के अनुकूल, स्वाभाविक प्रवाहमयी, आलंकारिक और मुहावरेदार, अर्थमयी, नपी-तुली, भावानुकूल, प्रांजल भाषा का सहज-सुकुमार प्रयोग करना सचमुच भारी क्षमता का काम है। मुक्तक की रचना प्रधानतया व्यंग्य-प्रधान उत्तम काव्य में होती है। मानव-स्वभाव का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करना और प्रकृति-पर्यवेक्षण एवं प्रकृति की अनुभूति के साथ गहन-से-गहन निगूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करना मुक्तकों की रचना का आदर्श होता है। विद्वद्वर पंडित पद्मसिंह शर्मा ने ठीक ही लिखा है—

"मुक्तक की रचना कविता-शक्ति की परा काष्ठा है। महाकाव्य, खंड काव्य या आख्यायिका आदि में यदि कथानक का क्रम अच्छी तरह बैठ गया, तो बात निभ जाती है। कथानक की मनोहरता पाठक का ध्यान कविता के गुण-दोष पर नहीं पड़ने देती। कथा-काव्य में हज़ार में दस-बीस पद्य भी मार्के के निकल आए, तो बहुत हैं। कथानक की सुंदर संघटना, वर्णन-शैली की मनोहरता और

सरलता आदि के कारण कुल मिलाकर काव्य के अच्छेपन का प्रमाण-पत्र मिल जाता है। परंतु मुक्तक की रचना में कवि को गागर में सागर भरना पड़ता है। एक ही पद्य में अनेक भावों का समावेश और रस का सन्निवेश करके लोकोत्तर चमत्कार प्रकट करना पड़ता है। ..इसके लिये कवि का सिद्ध सारस्वतीक और वश्यवाक् होना आवश्यक है। मुक्तक की रचना में कवि को रस की अक्षुण्णता पर पूरा ध्यान रखना पड़ता है, और यही कविता का प्राण है।''

(सतसई-संजीवन-भाष्य, भू० भा०)

यद्यपि यथार्थ में रसमय काव्य ही काव्य है, पर कुछ ऐसे काव्य भी लिखे जाते हैं, जो नीति एवं धर्म आदि के उपदेश को प्रधानतया प्रतिपादित करनेवाले होते हैं। इनमें बहुधा रस का अभाव रहता है, सुभाषित-मात्र इनमें रहता है, जिसमें केवल वाग्वैदग्ध्य का चमत्कार होता है। मुक्तक भी इस पर बहुतायत से लिखे जाते हैं। ऐसे सूक्ति-प्रधान मुक्तकों की रचना नीति और धर्म आदि के उपदेश देने के उद्देश्य से की जाती है। इनमें भी कथन-शैली का बाँकपन और शब्द-चमत्कार का समावेश होना आवश्यक होता है, क्योंकि इनके विना सूक्ति-प्रधान उत्तम मुक्तक नहीं रचे जा सकते। रस को छोड़कर अन्य काव्यांगों का समुचित समावेश इनमें अत्यंत संक्षेप में करना पड़ता है।

काव्य की अभिव्यक्ति सर्वोत्कृष्टतया व्यंग्य में होती है, इसीलिये अनेक साहित्य-रीति-ग्रंथकार—महामति विवेचकों ने व्यंग्य-प्रधान काव्य को श्रेष्ठता दी है। बहुत-से आचार्य और आगे बढ़ गए हैं; रस की अभिव्यक्ति के लिये भी सबल होने के कारण ध्वनिमय व्यंग्य को काव्य की आत्मा घोषित किया है। इस प्रकार की रस-ध्वनि-पूर्ण काव्य-रचना करनेवाले ही महाकवि कहलाते हैं। यह व्यंग्य काव्य में ध्वनि से उसी प्रकार झलकता है, जिस प्रकार अंगना का लावण्य उसके सुंदर शरीर से। धुरंधर काव्य-मर्मज्ञ आनंदवर्द्धनाचार्य लिखते हैं—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव
वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ;
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं
विभाति लावण्यमिवांगनासु। (ध्वन्यालोक १।४)

"महाकवियों की वाणी में वाच्य अर्थ के अतिरिक्त प्रतीयमान अर्थ एक ऐसी चमत्कारक वस्तु है, जो अंगना के अंग में हस्तपादादि प्रसिद्ध अवयवों के अतिरिक्त लावण्य की तरह चमकती है।"

दुलारे-दोहावली के मुक्तक

इस प्रकार के मुक्तक और वे भी रस, ध्वनि और भावानुगामिनी उत्कृष्ट काव्य-भाषा से युक्त, दुलारे-दोहावली में, यत्र-तत्र बिखरे हुए देख पड़ते हैं। यद्यपि ऐसा जान पड़ता है कि दोहावली में आदि से अंत तक कोई क्रम नहीं, क्योंकि प्रत्येक पद्य मुक्तक होने से स्वतंत्र है, फिर भी विषय-विचार की दृष्टि से दुलारे-दोहावली में क्रम है, जो ध्यान से देखने पर मालूम हो जायगा। दोहावली के ये दोहे भाषा और भाव की दृष्टि से परमोत्कृष्ट हुए हैं। 'सूक्ति' के दोहे भी बड़े चुटीले और अनूठे काव्य के उदाहरण हैं। उनमें भी कथन-शैली के तीखेपन के साथ मधुर कसक-पूर्ण बाँकपन पाया जाता है। इस दोहावली को सूक्ष्म तथा गहन दृष्टि से देखने पर गागर में सागर दिखलाई पड़ने लगता है। इतने विषयों को, इतने थोड़े में, इतने अनूठे ढंग से, सरल काव्य में लिखना और उसमें भी ऐसा कुछ लिख जाना, जो बड़े-बड़े विद्वान् व्यक्ति भी न लिख सके थे, सचमुच असाधारण प्रतिभा का काम है। हमारे दोहावलीकार ने ऐसा ही किया है।

गागर में सागर

इस एक ही छोटे काव्य-कोष में इतना भर देना यह सिद्ध करता है कि इसके पूर्व रचयिता ने बहुत कुछ देखा-भाला है, और उसका हृदय असंख्य अनुभूतियों का आगार बन चुका है। इसमें कवि ने जिस

विषय को उठाया है, उसका बड़ा ही सच्चा, अनुभूत, हृदयग्राही और भावमय चित्र, अत्यंत मनोरम, भावानुगामिनी भाषा में, उपस्थित कर दिया है। सजीव कल्पना-मूर्तियों द्वारा शाश्वत प्रकृति के अंतरंग और बहिरंग का रमणीय वर्णन साहित्य-शास्त्रानुमोदित उत्कृष्ट कवि-कौशल से करने में दुलारे-दोहावलीकार को अभिनंदनीय सफलता मिली है। विशुद्ध भारतीय भावनाओं को मानव-प्रकृति को ग्राह्य, विशद कलात्मक रीति से उपस्थित करने में कवि का कौशल देखते ही बन पड़ता है। इस काव्य-कोष में ऐसे-ऐसे अनमोल मुक्तक-रत्न हैं, जिनका मूल्य आँकना बड़े-बड़े जौहरियों का ही काम है। इसमें कवि का प्रकृति-पर्यवेक्षण और विशाल अनुभव स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

दोहावली में काव्यांग

दुलारे-दोहावली में अनेक काव्यांगों के बहुत ही प्रकृष्ट और विशुद्ध उदाहरण पाए जाते हैं। यहाँ कुछ का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। निम्न-लिखित उदाहरणों से कवि का काव्य-रीति का मार्मिक ज्ञाता होना सूचित होता है। निम्न-लिखित उद्धरणों में लाक्षणिक पद्धति का मनोमोहक चमत्कार दर्शनीय है—

पूर्वानुरागांतर्गत अनूढ़ा की अभिलाषा-दशा—

> गुरुजन लाज-लगाम, सखि-सिख-साँटो हू निदरि—
> पेखत प्रिय मुख-ठाम, टरत न टारे दृग-तुरग।

कलहांतरिता—

> नाह-नेह-नभ तें अली, टारि रोस कौ राहु—
> पिय-मुख-चंद दिखाहु प्रिय, तिय-कुमुदिनि बिकसाहु।

वय-संधि—

> देह-देस लाग्यौ चढ़न इत जोबन-नरनाह,
> पदन-चपलई उत लई जनु दृग-दुरग-पनाह।

विरह-निवेदन—

झपकि रही, धीरैं चलौ; करौ दूरि तें प्यार ,
पीर-दब्यौ दरकै न उर चुंबन ही के भार।

प्रवत्स्यत्पतिका—

तन - उपबन सहिहै कहा बिछुरन - झंझाबात ,
उड़यौ जात उर-तरु जबै चलिबे ही की बात ?

आगतपतिका—

मुकता सुख-अँसुआ भए, भयौ ताग उर-प्यार ;
बरुनि-सुई तें गूँथि दृग देत हार उपहार।

रूपकातिशयोक्ति-अलंकार—

लखि अनेक सुंदर सुमन, मन न नेक पतियाइ ;
अमल कमल ही पै मधुप फिरि-फिरि फिरि मँड़राइ।

व्यतिरेक—

दमकति दरपन-दरप दरि दीपसिखा-दुति देह ;
वह दृढ़ इकदिसि दिपत, यह मृदु, दस दिसनि स-नेह।
मैन-ऐनै तव नैंन, सोहैं सरसिज-से सुभग ;
ए बिकसैं दिन-रैन, वे बिकसैं बस दिबस हीं !

असंगति—

लरैं नैंन, पलकैं गिरैं, चित तरपैं दिन-रात ,
उठै सूल उर, प्रीति-पुर अजब अनौखी बात !

उत्प्रेक्षा—

कढ़ि सर तें द्रुत दै गई दृगनि देह-दुति चौंध ;
बरसत बादर-बीच जनु गई बीजुरी कौंध।

दोहावली में अलंकार

दुलारे-दोहावली में वैसे तो अनेक अलंकारों का वर्णन है, और ख़ूब है ; परंतु कविवर दुलारेलाल का पूर्ण कौशल रूपक-अलंकार के

उत्कृष्ट वर्णनों में परिलक्षित होता है। स्मरण रहे, उपमा की अपेक्षा रूपक का निर्वाह कठिन होता है। इसमें भी परंपरित सावयव सम अभेद रूपक लिखना तो पूर्ण कवित्व-सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है। प्रस्तुत दोहावली में कविवर ने सावयव सम अभेद रूपक-अलंकार की पूर्ण छटा अनेक दोहों में बड़े ही कौशल से छहराई है। किसी विषय को उठाकर, उसके उचित उपकरणों को सजाकर, वैसे ही भाव-साधर्म्य का दूसरा सावयव दृश्य उपस्थित कर उसमें आदि से अंत तक सम अभेद रूपक का निर्वाह कर ले जाना विलक्षण प्रतिभा, प्रबल कल्पना और व्यापक ज्ञान के साथ-साथ सरस अनुभूति का परिचायक है। अब तक रूपकों की अनुपम छटा के लिये बिहारी-सतसई की ही सर्वापेक्षा अधिक प्रसिद्धि और सम्मान है। पर दुलारे-दोहावली के उत्कृष्ट रूपकों की परंपरित सावयव सम अभेद रहने की काव्य-चातुरी देखकर अब विवश होकर यही कहना पड़ता है कि उत्कृष्ट रूपकों की दृष्टि से दुलारे-दोहावली के दोहे बिहारी-सतसई के दोहों का सफलता से मुक़ाबला करते हैं। ऐसे दो-चार रूपक यहाँ देखिए—

हृदय कूप, मन रहँट, सुधि-माल माल, रस राग,
बिरह वृषभ, बरहा नयन, क्यों न सिंचै तन-बाग ?
नाह-नेह-नभ तें अली, टारि रोस कौ राहु—
पिय-मुख-चंद दिखाहु प्रिय, तिय-कुमुदिनि बिकसाहु।
चित-चकमक पै चोट दै, चितवन-लोह चलाइ—
लगन-लाइ हिय-सूत में ललना गई लगाइ।
रही अछूतोद्धार - नद छुआछूत - तिय डूबि ;
सास्त्रन कौ तिनकौ गहति क्रांति-भँवर सों ऊबि।
दंपति-हित-डोरी खरी परी चपल चित-डार,
चार चखन-पटरी अरी, झोंकनि झूलत मार।

भाषा

दुलारे-दोहावली की भाषा प्रौढ़ साहित्यिक ब्रजभाषा है। स्मरण रहे, प्राचीन काल ही से साहित्यिक ब्रजभाषा में अत्यंत प्रचलित फ़ारसी, बुंदेलखंडी, अवधी और संस्कृत के तत्सम शब्दों का थोड़ा-बहुत प्रयोग होता रहा है। ब्रजभाषा के किसी भी कवि की भाषा का बारीकी से अध्ययन करने पर उपर्युक्त बात का पता सहज ही चल सकता है। कुछ प्राचीन कवियों ने तो अनुप्रास और यमक के लिये भाषा को इतना तोड़ा-मरोड़ा है कि शब्दों के रूप ही विकृत हो गए हैं। यद्यपि दोहावलीकार ब्रजभाषा के निर्माता सूर, बिहारी आदि कवीश्वरों द्वारा अपनाए गए बुंदेलखंडी, अवधी और फ़ारसी के अत्यंत प्रचलित शब्दों का बहिष्कार करना अनुचित मानते हैं, पर उन्होंने प्रायः ब्रजभाषा के विशुद्ध रूप को ही अपनी रचना में अपनाया है। दूसरी प्रांतीय हिंदी-बोलियों अथवा फ़ारसी के शब्दों का आपने इने-गिने दस-पाँच स्थलों पर ही, जहाँ उचित समझा है, प्रयोग किया है। आपने अत्यंत प्रचलित अँगरेज़ी-शब्दों का भी दो-चार दोहों में प्रयोग किया है; परंतु ऐसे स्थलों में प्रयुक्त अँगरेज़ी-शब्द वे हैं, जिनके पर्यायवाची शब्द हिंदी में नहीं मिलते, और जिन्हें आज जनता भली भाँति समझती है। जैसे—

सासन - कृषि तें दूर दीन प्रजा - पंछी रहैं,
सासक - कृषकन क्रूर आर्डिनेंस - चंचौ रच्यौ।

इसमें आर्डिनेंस का प्रयोग ऐसा ही हुआ है। एक और भी उदाहरण दर्शनीय है, जिसमें प्रचलित अँगरेज़ी-शब्दों के प्रयोग द्वारा कविवर श्रीदुलारेलाल ने 'भाषा-समक'-अलंकार रक्खा है—

सत-इसटिक जग-फ़ील्ड लै जीवन-हाकी खेलि ;
वा अनंत के गोल में आतम-बालहिं मेलि।

दोहावली की भाषा में बोलचाल की स्वाभाविकता और ज़बाँदानी

का चमत्कार सर्वत्र दर्शनीय है। पद-मैत्री का भी सौष्ठव है। अनुप्रास, श्लेष और यमक का बड़ा ही औचित्य-पूर्ण, रसानुकूल, सुंदर प्रयोग किया गया है। माधुर्य, प्रसाद और ओज की अनेक दोहों में निराली छटा आ गई है। यहाँ स्थानाभाव के कारण भाषा-सौंदर्य के विषय में अधिक न लिखकर मैं दोहावली के शब्दालंकारों की छटा की कुछ झलक दिखलाता हूँ—

अनुप्रास—

संतत सहज सुभाव सों सुजन सबै सनमानि—
सुधा-सरस सींचत स्रवन सनी-सनेह सुबानि।
कियौ कोप चित-चोप सों, आई आनन ओप,
भयौ लोप पै मिलत चख, लियौ हियौ हित छोप।
स्याम-सुरँग रँग-करन-कर रग रग रँगत उदोत;
जग-मग जगमग जगमगत, डग डगमग नहिं होत।
गुंजनिकेतन-गुंज-जुत हुतौ कितौ मनरंज!
लुंज-पुंज सो कुंज लखि क्यों न होइ मन रंज?
नंद-नंद सुख-कंद कौ मंद हँसत मुख-चंद,
नसत दंद-छलछंद-तम, जगत जगत आनँद।

यमक—

बस न हमारौ, बस करहु, बस न लेहु प्रिय लाज;
बसन देहु, ब्रज मैं हमैं बसन देहु ब्रजराज!
खरी साँकरी हित-गली, बिरह-काँकरी छाइ—
अगम करी तापै अली, लाज-करी बिठराइ।

श्लेष—

बिषय-बात मन पोत कों भव-नद देति बहाइ;
पकरु नाम-पतवार दृढ़, तौ लगिहै तट आइ!
मन-कानन में धँसि कुटिल, काननचारी नैंन—
मारत मति-मृगि मृदुल, पै पोसत मृगपति-मैंन!

सखी, दूरि राखौ सबै दूती-करम कलाप ;
मन-कानन उपजत-बढ़त प्यार आप-ही-आप ।

दोहावली की भाषा परिमार्जित, व्याकरण-विशुद्ध और शब्दालंकारों से सुसज्जित है । उसमें असमर्थ, विकृत तथा अप्रयुक्त शब्द नहीं हैं, एवं उसकी सबसे बड़ी विशेषता है समास में कहने की प्रणाली । अत्यंत संक्षेप में विशाल अर्थ भरने में दोहावलीकार ने प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की है । इसे देखकर रहीम के इस दोहे का स्मरण हो आता है –

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं,
ज्यों 'रहीम' नट कुंडली सिमिटि, कूदि कढ़ि जाहिं ।

दोहावली की विशेषता और उसका अंतरंग

दुलारे-दोहावली में हम ब्रजभाषा की कोमल-कांत पदावली में— भावानुगामिनी तथा काव्य-गुण-संपन्न भाषा में शृंगार और करुण-रस के कोमलतम मनोभावों की मंजुल, सजीव कल्पना-मूर्तियाँ, वीर-रस की ओजस्विनी उक्तियाँ, देश-प्रेम का छलकता हुआ प्याला, शांत-रस की सुधा-धारा और राष्ट्रीयता एवं नीति की चुटीली, ज़ोरदार सूक्तियाँ पाते हैं । इन सबका वर्णन कवि ने उत्कृष्टतया किया है । यद्यपि दोहावली के दोहों में अनेक विषयों एवं रसों का वर्णन है, पर प्रधानता शृंगार-रस की है । शृंगार-रस की रचना में भी संयत प्रकृति के सुकवि ने निर्लज्जता-पूर्ण, उद्वेग-जनक वर्णन को छुआ तक नहीं । दुलारे-दोहावली के शृंगार-वर्णन के दोहे विशुद्ध रति-भाव के द्योतक हैं, जिनमें अनंग काम अशरीरी होकर ही आया है । यथार्थ में कविवर ने भावधारा-प्रधान साहित्य के मुख्य भाव प्रेम की अभिव्यंजना और अलौकिक सौंदर्य की ही अवतारणा अपने शृंगार-रस के दोहों में की है । आपने लौकिक अर्थात् नर-नारी-संबंधी और अलौकिक अर्थात् परमात्मा-संबंधी द्विविध शृंगार के संयोग-वियोगात्मक वर्णनों में प्रेम

की प्रधानता रखकर अनुभावों का कलामय चमत्कार दिखलाया है। यही एक ऐसे कवि हैं, जो शृंगार-रस के अनेक सफल चित्र उपस्थित करने में उद्वेग को सर्वथा बचा गए हैं। इसके लिये कवि की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। आप कुलटा और गणिका तक के भाव-मय, काल्पनिक शब्द-चित्रों में उद्वेग का अभाव ही देखेंगे। ऐसे दो उदाहरण यहाँ देखिए—

कुलटा—

लंक लचाइ, नचाइ दृग, पग उँचाइ, भरि चाइ,
सिर धरि गागरि, मगन, मग नागरि नाचति जाइ।

गणिका—

मृदु हँसि, पुनि-पुनि बोलि प्रिय, कै रूखी रुख बाम—
नेह उपै, पालै, हरै, लै बिधि - हरि - हर - काम।

दोहावलीकार ने रस-व्यंजना का वैभव अनुभावों और हावों की सरस योजना में प्रदर्शित किया है। कुछ उदाहरण लीजिए—

झपटि लरत, गिरि-गिरि परत, पुनि उठि-उठि गिरि जात;
लगनि - लरनि चख - भट चतुर करत परसपर घात।
ऊँच - जनम जन, जे हरैं नित नमि-नमि पर-पीर;
गिरिवर तें ढरि - ढरि धरनि सींचत ज्यों नद - नीर.।

भावों के घात-प्रतिघात का भी कविवर श्रीदुलारेलाल ने अनूठा वर्णन किया है। जैसे—

जीवन - धन - जय - चाह, धन कंकन-बंधन करति;
उत तन रन - उतसाह, इत बिछुरन की पीर मन।
तिय उलही पिय - आगमन, बिलखी दुलही देखि;
सुखनभ - दुखधर-बीच छन मन - त्रिसंकु-गति लेखि।

संयोग-शृंगार के वर्णन में भी कवि ने रति-भाव की सरस अनु-भूति की अभिव्यंजना को ही प्रधानता दी है। जैसे—

लेत - देत संदेस सब, सुनि न सकत कछु कोय ;
बिना तार कौ तार जनु कियौ दृगनु तुम दोय ।
बही जु आवन - बात में, मूँदि लिए दृग लाल ;
नेह - गही उलही, रही मही - गड़ी - सी बाल ।
दंपति - हित - डोरी खरी परी चपल चित-डार ,
चार चखन - पटरी अरी, झोंकनि झूलत मार ।

दुलारे-दोहावली में प्रधानतया विप्रलंभ या वियोग-शृंगार का वर्णन पाया जाता है। कविवर ने इसमें भाव-व्यंजना या रस-व्यंजना के अतिरिक्त वस्तु-व्यंजना का भी आश्रय लिया है, परंतु इनकी वस्तु-व्यंजना औचित्य की सीमा का उल्लंघन करके खिलवाड़ के रूप में कहीं नहीं हुई है। इनके भावों में स्वाभाविक मृदुता और सरसता है। सहृदय भावुक कवि ने अन्यान्य कवीश्वरों के समान विरह के ताप को लेकर खिलवाड़ नहीं किया है, फिर भी इनका विरह-वर्णन बड़ा ही तीव्र और चुटीला है। यहाँ दो-चार उदाहरण देखिए —

कठिन बिरह ऐसी करी, आवति जबै नगीच—
फिरि - फिरि जाति दसा लखे करि दृग मीचति मीच ।
नई लगन किय गेह, अली, ललो के ललित तन ;
सूखत जात अछेह, तरु ज्यों अंबरबेलि सों ।
तचत बिरह - रबि उर - उदधि, उठत सघन दुख - मेह,
नयन - गगन उमड़त घुमड़ि, बरसत सलिल अछेह ।
धाय धरति नहिं अंग जो मुरछा - अली अयान,
उमगि प्रान - पति - संग तो करतो प्रान पयान ।
बिरह - सिंधु उमड़यौ इतौ पिय - पयान - तूफान,
बिथा - बीचि - अवली अली, अथिर प्रान - जलजान ।
जोबन-उपबन-खिलि अली, लली-लता मुरझाय !
ज्यों-ज्यों डूबे प्रेम-रस, त्यों-त्यों सूखति जाय ।

कविवर ने भक्ति-शृंगार के वर्णन को भी अपनी दोहावली में, उचित मात्रा में, अनूठे ढंग से, रक्खा है। यहाँ दो-एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

श्रीराधा - बाधाहरनि - नेहअगाधा - साथ—
निहचल नयन-निकुंज में नचौ निरंतर नाथ !
बस न हमारौ, बस करहु, बस न लेहु प्रिय लाज ;
बसन देहु, ब्रज मैं हमैं बसन देहु ब्रजराज !

श्रीकृष्ण-भक्ति की वैष्णव-संप्रदायों की इस सखी-भक्ति के अतिरिक्त आपने रहस्यवादियों की शृंगार-भक्ति के भी दोहे कहे हैं। कुछ दोहे यहाँ देखिए—

नीच मीच कौं मत कहै, जनि उर करै उदास ;
अंतरंगिनी प्रिय अली पहुँचावति पिय-पास।
समय समुझि सुख-मिलन कौ, लहि मुख-चंद-उजास,
मंद - मंद मंदिर चली लाज-मुखी पिय - पास।
उर-धरकनि-धुनि माहिं सुनि पिय-पग-प्रतिधुनि कान—
नस-नस तैं नैननि उमहि आए उतसुक प्रान।
चहूँ पास हेरत कहा करि - करि जाय प्रयास ?
जिय जाके साँची लगन, पिय वाके ही पास !

शांत-रस और भक्ति की सुधा-धारा भी कविवर ने अपने अनेक दोहों में अत्युत्कृष्टतया प्रवाहित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। इस बात के प्रमाण-स्वरूप निम्न-लिखित दो-चार दोहे देखिए—

माया - नींद भुलाइकैं जीवन - सपन सिहाइ,
आतम - बोध बिहाइ तैं मैं - तैं ही बरराइ।
जगि-जगि, बुझि-बुझि जगत में जुगनू की गति होति;
कब अनंत परकास सों जगिहै जीवन-जोति ?
दरसनीय सुनि देस वह, जहँ दुति-ही-दुति होइ ;
हौं बौरौ हेरन गयौ, बैठयौ निज दुति खोइ।

इसी में योग-वर्णन का यह दोहा भी दर्शनीय है—

इड़ा - गंग, पिंगला-जमुन सुखमन-सरसुति-संग—
मिलत उठति बहु अरथमय, अनुपम सबद-तरंग।

भक्ति-वर्णन के निम्न-लिखित दोहे भी देखिए, कैसे अनूठे हैं—

बिषय-बात मन-पोत कौं भव-नद देति बहाइ;
पकरु नाम-पतवार दृढ़, तौ लगिहै तट आइ।

कब तें. लै मन - ठीकरौ, खरौ भिखारी द्वार;
दरसन-दुति-कन दै हरौ मति-तम-तोम अपार।

अगम सिंधु जिमि सीप-उर मुकता करत निवास,
तिमिर-तोम तिमि हृदय बसि करि हृदयेस ! प्रकास।

ग्राह-गहत गजराज की गरज गहत ब्रजराज—
भजे 'गरीबनिवाज' कौ बिरद बचावन - काज।

नंद-नंद सुख - कंद कौ मंद हँसत मुख-चंद,
नसत दंद-छलछंद-तम, जगत जगत आनंद।

इस कवि ने चेतावनी के भी बड़े ही चुटीले और गंभीर दोहे कहे हैं—

जग - नद में तेरी परी देह - नाव मँझधार;
मन-मलाह जो बस करै, निहचै उतरै पार।

गई रात, साथी चले, भई दीप - दुति मंद,
जोबन-मदिरा पी चुक्यौ, अजहुँ चेति मति-मंद !

जोति उघरनी तें अजहुँ खोलि कपट-पट-द्वारु—
पंजर - पिंजर तें प्रभो, पंछी - प्रान उबारु।

कविवर दुलारेलाल ने अनेक दोहों में सजीव प्रतिमाओं की तसबीरें खींच दी हैं, जैसे—

नई सिकारिन - नारि, चितवन - बंसी फेंकिकैं,
चट घूँघट-पट डारि, चंचल चित-झख लै चली।

लंक लचाइ, नचाइ दृग, पग उँचाइ, भरि चाइ,
सिर धरि गागरि, मगन, मग नागरि नाचति जाइ।
बार बित्यौ लखि, बार झुकि बार बिरह के बार;
बार-बार सोचति—'कितै कीन्हीं बार लबार?'
जोबन-बन-सुख-लीन मन-मृग दृग-सर बेधि जनु—
धन-ब्याधिनि परबीन बाँधति अलकन-पास में।

दोहावली में ऐसे दोहे बहुत हैं, जिनमें बातें इस प्रकार से कही गई हैं कि जी में बैठ जाती हैं। मन कहता है—वाह! ऐसे पाँच दोहे नीचे दिए जाते हैं—

पुर तें पलटे पीय की पर-तिय-प्रीतिहिं पेखि—
बिछुरन-दुख सों मिलन-सुख दाइक भयौ बिसेखि।
बिरह-बिजोगिनि कौ करत सपन सजन-संजोग,
है समाधि हू सों सरस नींद, न नींदन-जोग।
हौं सखि, सीसी आतशी, कहति साँच-ही-साँच;
बिरह-आँच खाई इती, तऊ न आई आँच!
सोवत कंत इकंत, चहुँ चितै रही मुख चाहि;
पै कपोल पै ललक लखि भजी लाज-अवगाहि।
धाय धरति नहिं अंग जो मुरछा-अली अयान,
उमगि प्रान-पति-संग तो करतो प्रान पयान।

वीर-रस की अभिव्यंजना में जो दोहे लिखे गए हैं, उनमें कवि को अपूर्व सफलता मिली है। यहाँ दो-चार दोहे देखिए—

करी करन अकरन करनि करि रन कवच-प्रदान;
हरन न करि अरि-प्रान निज करनि दिए निज प्रान।
दुष्ट दुसासन दलमल्यौ भीम भीमतम-भेस,
पाल्यौ प्रन, छाक्यौ रकत, बाँधे कृस्ना-केस।

दुष्ट-दनुज-दल-दलन कों धरे तीक्ष्ण तरवार—
देश - शक्ति दुर्गावती दुर्गा कौ अवतार।
लुट्यो राज, रानी बिकी, सहत डोम-गृह दंद,
मृत सुत हू लखि प्रियहिं तें कर माँगत हरिचंद !

इन दोहों में ओज और वीर-रस की अभिव्यंजना का हृदयहारी कौशल देखते ही बनता है !

नीति-वर्णन की सूक्तियों में भी दुलारे-दोहावली में अद्भुत चमत्कार आया है। देखिए —

संगत के अनुसार ही सबकौ बनत सुभाइ;
साँभर में जो कछु परै, निरो नौंन ह्वै जाइ।
होत निरगुनी हू गुनी बसे गुनी के पास;
करत लुएँ खस सलिलमय सीतल, सुखद, सुबास।
नियमित नर निज काज-हित समय नियत करि लेय;
रजनी ही में गंध ज्यों रजनी - गंधा देय।
संतत सहज सुभाव सों सुजन सबै सनमानि —
सुधा-सरस सींचत स्रवन सनी-सनेह सुबानि।
सुखद समै संगी सबै, कठिन काल कोउ नाहिं;
मधु सोहैं उपबन सुमन, नहिं निदाघ दिखराहिं।
जुद्ध - मद्ध बल सों सबल कला दिखाई देति;
निरबल मकरिहु जाल बुनि सरप-दरप हरि लेति।

सौंदर्य-वर्णन में कवि ने मानुषी रूप और प्रकृति का श्लाघ्य वर्णन किया है। स्मरण रहे, कला में सौंदर्य प्रधान है। इसी से कवि सौंदर्य का वर्णन करता है। बाह्य प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन संसार के संपूर्ण श्रेष्ठ कवि सदा से करते आए हैं। कविवर दुलारेलाल के ऐसे वर्णनों में जो श्रेष्ठता है, उसे सौंदर्य-प्रेमी पाठक निम्न-लिखित दोहों में पाएँगे। मानुषी रूप का वर्णन देखिए —

बिंब बिलोकन कौं कहा झमकि झुकति झर-तीर ?
भोरी, तुव मुख-छबि निरखि होत बिकल, चल नीर !
चख-झख तव दृग-सर-सरस-बूड़ि, बहुरि उतराय—
बेंदी-छटके में छटकि अटकि जात निरुपाय।
झीनें अंबर झलमलति उरजनि-छबि छितराइ ;
रजत-रजनि जुग चंद-दुति अंबर तें छिति छाइ।
मोह - मूरछा लाइ, करि चितवन - करन - प्रयोग,
छबि-जादूगरनी करति बरबस बस चित-लोग।
मैन - ऐन तव नैन, सोहैं सरसिज - से सुभग ;
ए बिकसैं दिन-रैन, वे बिकसैं बस दिवस हीं !
कढ़ि सर तें द्रुत दै गई दृगनि देह-दुति चौंध ;
बरसत बादर - बीच जनु गई बीजुरी कौंध।
रमनी - रतनंनि हीर यह, यह साँचो ही सोर ;
जेती दमकति देह - दुति, तेतौ हियौ कठोर !

प्राकृतिक वर्णनों में भी विलक्षण सौंदर्य के साथ कवि ने काल्पनिक भाव-सौंदर्य का अभिन्न मेल मिलाकर हृदयग्राही सौंदर्य की सृष्टि की है। स्मरण रहे, जन-साधारण की दृष्टि से कवि की दृष्टि कुछ विलक्षण होती है। शुभ्र-सलिला सरिता जन-साधारण की दृष्टि में शुभ्र-सलिला सरिता-मात्र है, पर कवि की दृष्टि में उस शुभ्र-वसना सुंदरी का शरीर शृंगार की क्रीड़ा-भूमि है। निम्न-लिखित दोहों से पाठकों को कविवर दुलारेलाल के प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णन की महत्ता भली भाँति विदित हो सकेगी। देखिए—

हिममय परबत पर परति दिनकर - प्रभा प्रभात ;
प्रकृति - परी के उर परयो हेम - हार लहरात।
नखत-मुकत आँगन-गगन प्रकृति देति बिखराय,
बाल हंस चुपचाप चट चमक - चोंच चुगि जाय।

जनु जु रजनि-बिछुरन रहे पदुमिनि-आनन छाइ,
ओस-आँसु-कन सो करन पोंछत रबि-पिय आइ।
दिन - नायक ज्यों - ज्यों बढ़त कर अनुराग पसारि,
त्यों-त्यों लजि सिमटति, हटति निसि-नवनारि निहारि।
लरिकाई - ऊषा दुरी, झलक्यौ जोबन - प्रात,
छई नई छबि - रबि - प्रभा बाल - प्रकृति के गात।
लखि जग-पंथी अति थकित, संझा-बाँह पसारि—
तम - सरायँ में दे रही छाँहँ छपा - भटियारि।
जटित सितारन - छंद, अंबर अंगनि झलमलत ;
चली जाति गति मंद, सजनि-रजनि मुख-चंद-दुति।
चंचल अंचल छलछलति जिमि मुख-छबि अवदात,
सित घन छनि-छनि झलमलति तिमि दिनमनि-दुति प्रात।

हमें आश्चर्य होता है, जब हम देखते हैं कि इतने संकुचित स्थल में कविवर उपर्युक्त विषयों के सिवा देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावों के वर्णनों की उपेक्षा न करके उनका उदात्त और समुज्ज्वल वर्णन कर सके हैं।

मातृभूमि-वंदना का निम्न-लिखित दोहा कवि के अगाध देश-प्रेम का साक्षी है—

मम तन तव रज-राज, तब तन मम रज-रज रमत ;
करि बिधि-हरि-हर-काज सतत सृजहु, पालहु, हरहु।

इसके सिवा राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण निम्न-लिखित गंभीर दोहे तो सर्वथा अनूठे ही हैं। देखिए—

झर-सम दीजै देस-हित झर-झर जीवन - दान ;
रुकि-रुकि यों चरसा-सरिस दैबौ कहा सुजान !
गांधी-गुरु तैं ग्यान लै, चरखा - अनहद - जोर—
भारत सबद - तरंग पै बहत मुकति की ओर।

पर-राष्ट्रन-अरि-चोट तें धन-स्वतंत्रता - कोट—
तटकर-परकोटा बिकट राखत अगम, अगोट।

कुछ अन्योक्तियाँ भी दर्शनीय हैं—

सुरस-सुगंध-विकास-बिंधि चतुर मधुप मधु-अंध!
लीन्हों पदुमिनि - प्रेम परि भलो ज्ञान कौ धंध!!
बसि ऊँचे कुट यों सुमन! मन इतरैए नाहिं;
यह बिकास दिन द्वैक कौ, मिलिहै माटी माहिं।
बात - झूलि रे सुमन यों निज श्री - भूलि न फूलि,
काल कुटिल कौ कर निरखि, मिलन चहत तैं धूलि।

राष्ट्र की प्रधान समस्या इस समय अछूतोद्धार और अस्पृश्यता-निवारण है। इसके विषय में सहृदय कलाकार कवि ने बड़ी ही ज़ोरदार सूक्तियाँ कही हैं। तीन दोहे यहाँ द्रष्टव्य हैं—

रही अछूतोद्धार - नद छुआछूत - तिय डूबि;
सास्त्रन कौ तिनकौ गहति क्रांति-भँवर सों ऊबि।
कलिजुग ही मैं मैं लखी अति अचरजमय बात—
होत पतित - पावन पतित, छुवत पतित जब गात।
छुआछूत - नागिन - डसी परी जु जाति अचेत,
देत मंत्रना - मंत्र तें गांधी - गारुड़ि चेत।

अनेक दोहों में वैज्ञानिक सिद्धांतों का भी बड़ा ही अनूठा समावेश किया गया है। ऐसे दोहे देखिए —

लहि पिय-रबि तें हित-किरन बिकसित रह्यौ अमंद;
आइ बीच अनरस-अवनि किय मलीन मुख-चंद।
हौं सखि, सीसी आतसी, कहति साँच-ही-साँच;
बिरह-आँच खाई इती, तऊ न आई आँच!
तचत बिरह-रबि उर-उदधि, उठत सघन दुख-मेह,
नयन-गगन उमड़त घुमड़ि, बरसत सलिल अछेह।

नैंन-आतसी काँच परि छबि - रबि - कर अवदात—
झुलसायौ उर-कागदहिं, उड़्यौ साँस-सँग जात।

साजन सावन - सूर - सम और कछू देखैं न;
तुव दृग-दुति-कर-निकर किय अंधबिंदुमय नैंन।

एती गरमी देखिकै करि बरसा - अनुमान—
अली भली पिय पैं चली लली दसा धरि ध्यान।

हृदय-सून ! तैं असत-तम हरौ, करौ जो सून,
सून-भरन के हित झपटि झट आवैगौ सून।

हीय-दीय-हित-जोति लहि अग जग-बासी स्याम!
दृग - दरपन बिंबित करहु निज छबि आठौं जाम।

भावोत्कृष्टता के विषय में दुलारे-दोहावली में पचासों दोहे हैं। यहाँ मैं केवल कुछ दोहे स्थाली-पुलाक-न्याय से परिचय प्राप्त कराने के हेतु देता हूँ—

खरी दूबरी तिय करी बिरह निठुर, बरजोर,
चितवन चढ़ति पहार जनु जब चितवति मम ओर।

धाय धरति नहिं अंग जो मुरछा-अली अयान,
उमगि प्रान-पति-संग तो करतो प्रान पयान।

निठुर, नीच, नादान बिरह न छाँड़त संग छिन;
सहृदय सजनि सुजान मीच, याहि लै जाहु किन?

साम्यवाद के विषय में निम्न-लिखित दोहा पढ़कर कवि के व्यापक ज्ञान के साथ-साथ उसकी हार्दिक अनुभूति का भी पता चलता है। देखिए तो, समय की प्रगति की कैसी सुंदर, उदार छटा निम्न-लिखित दोहा-रत्न में झलक रही है—

काम, दाम, आराम कौ सुघर समनुवै होइ,
तौ सुरपुर की कलपना कबहूँ करै न कोइ।

विश्व-प्रेम पर भी आपके दोहे दर्शनीय हैं—

जाति-पाँत की भीति तौ प्रीति-भवन में नाहिं,
एक एकता - छतहिं की छाँह मिलति सब काँहि।
ईसाई, हिंदू, जवन, ईसा, राम, रहीम,
बैबिल, बेद, कुरान में जगमग एक असीम।
एक जोति जग जगमगै जीव-जीव के जीय;
बिजुरी बिजुरीघर - निकसि ज्यों जारति पुर-दीय।

इस तरह आप देखेंगे कि ब्रजभाषा के इस कवि ने नवीन और प्राचीन, सभी विषयों पर सफलता-पूर्वक क़लम चलाई है।

दोहावली का संक्षिप्त परिमाण

उपर्युक्त उद्धरणों से यह भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि काव्य का यह छोटा-सा, परंतु बहुमूल्य कोष अत्यंत गंभीर और श्रेष्ठ वर्णनों का आगार है। इसकी रचना करके श्रीदुलारेलालजी अमर हो गए हैं। जो सज्जन इसके परिमाण की लघुता की ओर देखकर इसे श्रेष्ठ आसन देने में आनाकानी करें, उन्हें साहित्य-संसार के इस तथ्य का स्मरण रखना चाहिए कि किसी रचना का आदर परिमाण से नहीं, किंतु काव्योत्कर्ष की दृष्टि से होता है। संस्कृत-साहित्य के विशाल भांडार में एक सौ मुक्तक-रत्नों के कोष अमरुक-शतक का आदर उसकी रचना के काल से आज तक होता आया है। बड़े-बड़े काव्य-मर्मज्ञ, समर्थ समालोचक और साहित्य-गुरु-गंभीर रीति-ग्रंथों के प्रणेता उसे अत्यंत आदर देते आए हैं। अमरुक-शतक सहस्रों काव्य-प्रबंधों में सर्वोत्कृष्ट माना गया है। इसकी अपूर्वता पर मुग्ध होकर साहित्य-शास्त्र-निष्णात परीक्षकों ने यह घोषणा की है—

अमरुककवेरेकः श्लोकः प्रबन्धशतायते।

ध्वन्यालोक-जैसे श्रेष्ठ रीति-ग्रंथ-रत्न के रचयिता उद्भट साहित्याचार्य श्रीआनंदवर्द्धन ने ध्वन्यालोक में मुक्तकों पर विचार करते हुए अमरुक-शतक के विषय में लिखा है—

मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते। यथा ह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः शृंगारस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव।

अर्थात्, "एक संपूर्ण ग्रंथ (प्रबंध) में कवियों को रस-स्थापना का जो पूर्ण प्रबंध करना पड़ता है, वही एक मुक्तक में भी, जिस प्रकार अमरुक कवि के 'मुक्तक' शृंगार-रस का प्रवाह बहाने के कारण ग्रंथों (प्रबंधों) की समता प्राप्त करने में प्रसिद्ध हैं।"

जब केवल १०० मुक्तकों के कोष अमरुक-शतक को श्रेष्ठता और काव्योत्कर्षता के कारण इतना अधिक सम्मान प्रदान किया जा सकता है, तब कोई कारण नहीं कि दो सौ दोहों की दुलारे-दोहावली को, उत्कृष्ट रचना के कारण, समुचित सम्मान प्रदान न किया जाय। हम जानते हैं, संसार में ऐसे सज्जनों की संख्या बहुत ही थोड़ी है, जो दूसरों की उत्तम रचना को यथोचित आदर देने की उदारता से संपन्न होते हैं। हिंदी-साहित्य-सूर्य गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो स्पष्ट ही कहा है—

> ते नरवर थोरे जग माहीं,
> जे पर-भनित सुनत हरषाहीं।

फिर यह समय तो छिद्रान्वेषण-प्रधान कहा जा सकता है। इसमें किसी कवि को न्यायोचित सम्मान की आशा करना एक प्रकार से दुराशा है।

कविराज महाराजा भर्तृहरि ने अपने वैराग्य-शतक में ठीक ही कहा है—

> बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ;
> अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्। (श्लोक २)

अर्थात्, "जो विद्वान् हैं, वे मत्सर-ग्रस्त हैं ; जो धनवान् हैं, वे गर्व से दूषित हृदयवाले हैं ; इनके सिवा जो और लोग हैं, वे

अज्ञानी हैं, इसीलिये सुभाषित (सूक्ति-प्रधान उत्तम काव्य) शरीर में ही जीर्ण-शीर्ण हो जाता है।"

भावापहरण

यहाँ प्रसंग-वश भावापहरण पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि दुलारे-दोहावली के कुछ दोहे प्राचीन कवीश्वरों के भावों की छाया पर बनाए गए हैं। स्मरण रहे, अपने पूर्ववर्ती मनुष्यों के प्राप्त किए हुए ज्ञान से परवर्ती लोग लाभ उठाते आए हैं। यह संसार के आदि काल से होता आया है, और अंत तक होता जायगा। इसकी गति अबाध है। किसी भी क्षेत्र में यही सिद्धांत सर्वत्र दृष्टिगोचर होगा। संसार के प्रायः संपूर्ण धर्म और धर्माचार्यों के विषय में भी यही नियम लागू है। किसी एक धर्माचार्य ने सत्य के जिस सिद्धांत को खोज निकाला था, उसी का प्रतिपादन संपूर्ण धर्माचार्य करते आए हैं। अवश्य भाष्य में परिवर्तन हुए हैं, और यही बादवाले आचार्यों की मौलिकता कही जाती है।

कवि के संबंध में भी यही नियम लागू है। पूर्ववर्ती कवियों के भावों से परवर्ती कवि सदैव लाभ उठाते आए हैं। पर प्रथम श्रेणी के कलाकार कवि वे हैं, जो उस पूर्व-प्रसिद्ध भाव में कुछ नूतनता लाए हैं। ऐसे लोग भावापहरण के दोषी नहीं ठहराए जाते, क्योंकि जिस मैदान में पूर्ववर्ती ने अत्यंत प्रसिद्धि प्राप्त की हो, उसमें खम ठोककर उतरना और ऐसा बल—ऐसा कौशल – दिखलाना, जैसा वह परम प्रसिद्ध व्यक्ति भी न दिखला सका हो, सचमुच बड़ा ही प्रशंसनीय और अभिनंदनीय है। ध्वन्यालोककार श्रीआनंदवर्द्धनाचार्य ने भावापहरण पर विचार करते हुए लिखा है —

यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किञ्चित्
स्फुरितमिति मदीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते ;

अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्
सुकविरुपनिबध्नन् निन्द्यतां नोपयाति ।
(ध्वन्या० ४, १६)

अर्थात्, "जिस कविता में सहृदय भावुक को कुछ नूतन चमत्कार सूझ पड़े, उसमें यदि पूर्ववर्ती कवि की छाया भी झलकती हो, तो उससे कोई हानि नहीं । इस प्रकार के काव्य का रचयिता कवि अपनी बंधच्छाया से पुराने भाव को नवीन स्वरूप देने के कारण निंदा का पात्र नहीं समझा जा सकता ।"

यही पुनः लिख गए हैं—

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात् ;
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः ।

अर्थात्, "पेड़ वही पुराने होते हैं, पर वसंत अपने रस-संचार से उन्हें नवीन रूप प्रदान करके नया बना देता है । इसी प्रकार सुकवि अपनी प्रतिभा से पुराने काव्यार्थ में नवीन रस का संचार कर उन्हें विकासक वसंत के समान शोभामय और रमणीय बना देता है ।"

इसी कारण संसार की संपूर्ण भाषाओं के महाकवियों की रचनाओं में पूर्ववर्ती कवियों की छाया पाई जाती है। कवि-कुल-कलाधर कालिदास, शेक्सपियर, तुलसीदास, सूरदास, बिहारी, ग़ालिब और रवींद्रनाथ आदि संपूर्ण कवीश्वरों की रचना में पूर्ववर्ती कवियों के भावों की छाया प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है । कविवर दुलारेलाल की दुलारे-दोहावली भी इस नियम का अपवाद नहीं । उनके भी कुछ दोहे पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं के आधार पर लिखे गए हैं । पर यह बात अवश्य है कि ऐसे स्थलों में दुलारेलाल अपनी प्रतिभा के बल से नूतन चमत्कार उत्पन्न करके पूर्ववर्ती कवीश्वरों को बहुत पीछे छोड़ गए हैं, और इसी कारण वह अर्थापहरण या भावाप-

हरण के दोषी नहीं ठहराए जा सकते । यह बात मैंने दुलारे-दोहावली की 'पीयूषवर्षिणी' व्याख्या में भली भाँति सिद्ध की है ।

हाँ, एक बात यहाँ और कथनीय है । वह यह कि काव्य का आनंद सहृदय ही ले सकते हैं । जो सहृदय नहीं हैं, उनका किसी कविता को अच्छा या बुरा कहना उनकी धृष्टता-मात्र है । एक संस्कृत-कवि ने इसके विषय में यथार्थ ही लिखा है—

यत्सारस्वतवैभवं गुरुकृपापीयूषपाकोद्भवं
तल्लभ्यं कविनैव नैव हठतः पाठप्रतिष्ठाजुषाम् ;
कासारे दिवसं वसन्नपि पयः पूरं परं पंकिलं
कुर्वाणः कमलाकरस्य लभते किं सौरभं सैरिभः ।

अर्थात्, "गुरु-कृपा-रूप पीयूष-पाक से उत्पन्न वाणी (सरस्वती) के वैभव को कविजन ही प्राप्त कर सकते हैं, न कि वे प्रतिष्ठा-लोलुप, जो कविता का पाठ करके हठ-पूर्वक सम्मान चाहते हैं । सरोवर में सारे दिन पड़ा रहनेवाला और समग्र जल को कीचड़मय कर डालनेवाला भैंसा क्या कभी कमलों की सुंदर सुगंध प्राप्त कर सकता है ?"

व्यंग्य-प्रधान रचना का गूढ़त्व और टीका

अब इतना निवेदन और करना है कि दुलारे-दोहावली की रचना प्रधानतया व्यंग्य-प्रधान उत्तम काव्य में हुई है, अतएव इसका पूरा आनंद मर्मज्ञ विद्वान् ही ले सकते हैं । व्यंग्य-प्रधान काव्य को भली भाँति हृदयंगम करने की जिनमें क्षमता नहीं है, जो सहृदय काव्य-मर्मज्ञ नहीं हैं, उन्हें इसका समझना कठिन होगा । इसी से ऐसे उच्च कोटि के साहित्य-ग्रंथ का सटीक होना आवश्यक है । मैंने इस पर टीका और विस्तृत व्याख्या लिखी है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी ।

दोष-दर्शकों के प्रति

कुछ दोष-दर्शक सज्जन कदाचित् यह कहेंगे कि मैंने दोहावली का

अब तक गुण-गान ही किया है, उसके दोषों की ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं दिया। इसके विषय में मेरा अपना मत तो यह है कि दुलारे-दोहावली का महत्त्व गुण-बाहुल्य से है, न कि दोष-शून्यता से। फिर दोष-दर्शी आलोचकों के मत से तो संसार में दोष-शून्य काव्य की रचना ही असंभव-सी है। वे तो कहते हैं—

ऐसौ कवित न जगत में, जामें दूषन नाहिं।

अंतिम निवेदन

मैं अंतिम निवेदन में इतना तो अवश्य ही कहूँगा कि व्रजभाषा में वैज्ञानिक साहित्य-शास्त्र के निर्दिष्ट किए हुए उत्कृष्ट कलात्मक ढंग से ऐसा कुछ लिख लेना, जो सदियों से संसार में अभूतपूर्व सम्मान प्राप्त किए हुए महान् कवीश्वरों की वाणी के समकक्ष ठहर सके, सचमुच में बड़ी ही जीवट और प्रखर प्रतिभा का काम है, एवं सबल कल्पना-पेक्षित है। इस रचना का स्थान-निर्णय करना भविष्य के हाथों में है, पर इतना तो निश्चित है कि व्रजभाषा के वर्तमान बिहारी श्रीदुलारे-लालजी की यह कृति व्रजभाषा-साहित्य की अमर रचना है। मेरी कामना तो यह है कि भार्गवजी व्रजभाषा के भांडार को शीघ्र ही कोई उत्कृष्ट महाकाव्य देकर हिंदी-साहित्य की गौरव-वृद्धि करें।

इस भूमिका के प्रारंभिक दोनो खंड मेरे अध्ययन का परिणाम हैं। इसके लिये मैं अपने पूर्ववर्ती लेखकों का हृदय से आभार मानता हूँ।

आशा है, हिंदी-संसार अपने इस श्रेष्ठ कलाकार का समुचित समादर करेगा।

सागर (मध्यप्रदेश) २८। ७। ३४

विनीत
लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी

विनीत वक्तव्य

[ओरछा में, वीर-वसंतोत्सव के वक़्त, दुलारे-दोहावली पर देव-पुरस्कार प्राप्त कर लेने के पश्चात्, पुरस्कार-प्रदाता को, दोहावलीकार द्वारा दिया गया धन्यवाद]

भारतीय भूपालों में सर्वश्रेष्ठ, सहृदय हिंदी-हितैषी, काव्य-कला के कुशल पारखी, भारतीय भाषाओं की महारानी मंजु-मधुर ब्रजबानी के परम प्रेमी, देव-पुरस्कार के प्रसिद्ध प्रदाता श्रीसवाई महेंद्र महाराजा श्रीवीरसिंह देव ओरछाधिपति की सेवा में—

धन्यवाद

मम कृति दोस भरी खरी, निरी निरस जिय जोइ—
है उदारता रावरी, करी पुरसकृत सोइ।

× × ×

मधु मिलन

सुधा*-जनक जुग-मधु-मिलन सुमन-खिलन मधु माहिं;
उर-उपवन में सुरस-कन सुख-सौरभ सरसाहिं।

× × ×

ब्रजबानी

बर ब्रजबानी - पदुमिनी प्राचि-ओरछा-ओर—
लखि तमहर प्रिय बीर-रबि खिली पाइ सुख-भोर।

---

* ओरछाधिपति की ७½ वर्ष की कन्या और उसी उम्र की सुधा-पत्रिका। सुधा-पत्रिका के साथ-साथ जन्म पाने के कारण महाराज ने भी अपनी कन्या-रत्न का नाम सुधा रक्खा है। यह उनके हिंदी-प्रेम का ज्वलंत उदाहरण है।

ब्रजबानी-घन-प्रगति-वन देस-गगन-बिच छाइ—
दियौ दयालु महेंद्रजू जन-मन-मोर नचाइ।

× × ×

आलोचकों के प्रति

संतत मद हू तें अधिक पद कौ मद सरसाइ;
वाहि पाइ * बौराइ, पै याहि पाइ † बौराइ।

तो भी

जे पद-मद की छाकु छकि बोलें अटपट बैन,
सोऊ सुजन कृपा करें, भरें नेह सों नैन।

× × ×

अंतिम प्रार्थना

नेह-नेह दै जो दियौ साहित-दियौ जगाइ,
सतत भरयौई राखियौ, जगत जोति जगि जाइ।

श्रीमान् का प्रेम-पूर्वक प्रदत्त यह प्रसिद्ध पुरस्कार प्राप्त करके मैं अपने को गौरवान्वित समझता और इसके लिये श्रीमान् को सादर धन्यवाद देता हूँ। किंतु श्रीमान् को विदित ही है कि मेरा तो सर्वस्व ही सरस्वती माता पर न्योछावर है। फिर यह सरस्वतीदेवी का प्रसाद तो ख़ास तौर पर उन्हीं को समर्पण होना चाहिए। अतएव मैं आज इस पुरस्कार को भी सहर्ष एक ऐसी शुभ साहित्यिक सेवा में लगाने को उद्यत हूँ, जिसकी आवश्यकता का अनुभव सुदीर्घ समय से सभी सहृदय साहित्यिक सज्जन—कृतविद्य कवि-कोविद कर रहे होंगे। श्रीमान् का दिया हुआ यह धन मैं श्रीमान् के ही नाम से—

---

* पाठांतर सेइ।
† पाठांतर लेइ।

वसंत-पंचमी* के शुभ दिन को अमर करने के लिये — नवीन और प्राचीन काव्य-पुस्तकों के प्रकाशन में लगाना चाहता हूँ। पुस्तक-रूप में इतनी ही संपत्ति मैं अपनी ओर से भी इसमें सम्मिलित करके एक पुस्तक-माला 'देव-सुकवि-सुधा' नाम से, ४,०००) के मूलधन से, प्रकाशित करूँगा। देव पुरस्कार की रक़म से जो माला चलाई जाय, उसमें देव-शब्द संयुक्त होना तो ठीक है ही, सुधा-शब्द भी स्पष्ट कारणों से समीचीन है। आशा है, सहृदय साहित्य-संसार को भी यह नाम बहुत सार्थक—समुचित समझ पड़ेगा। अस्तु। इस पुस्तकावली का प्रबंध एक परिषद् द्वारा होगा, जिसमें अनेक सदस्य रहेंगे। इनका निर्वाचन बाद में हो जायगा। मेरी इच्छा है कि श्रीमान् सवाई महेंद्र महाराजा साहब स्वयं इसके सभापति रहें, और मैं मंत्री के रूप में सेवा करूँ। आशा है, श्रीमान् मेरी यह सांजलि समभ्यर्थना स्वीकार करके मुझे इस संपत्ति को इस शुभ कार्य में लगाने का आदेश देंगे। समिति को या मुझे अधिकार होगा कि किसी सुप्रसिद्ध साहित्यिक संस्था को यह सारी संपत्ति, जब समुचित समझे, समर्पित कर दे।

---

* वसंत-पंचमी के ही दिन मेरा जन्म हुआ, मेरी प्यारी गंगा-पुस्तकमाला का और गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस का जन्म भी उसी दिन हुआ, तथा वसंत-पंचमी को ही मैं उस स्वर्गीय आत्मा से भी एक किया गया था, जिसके नाम से मैं गंगा-पुस्तकमाला को गूँथ रहा हूँ।

देव-पुरस्कार के सर्वप्रथम विजेता

श्रीदुलारेलाल भार्गव

प्रार्थना

[एक]

सुमिरौ वा बिघनेस कौ
तेज* - सदन मुख - सोम,
जासु रदन-दुति-किरन इक
हरति बिघन - तम - तोम।

बिघनेस = गणेशजी। तेज = (१) प्रभा, (२) ज्ञान। सोम = (१) चंद्रमा, (२) आकाश। रदन = दाँत। तम-तोम = अंधकार-राशि।

* पाठांतर 'जोति'।

[दो]

बंदि बिनायक बिघन-अरि,
न छुन बिघन समुहाहिं ;
कर - इंगित के करत ही
छुईमुई ह्वै जाहिं।

समुहाहिं = सामना करें। कर = (१) सूँड़, (२) हाथ। इंगित करत ही = इशारा करते ही। छुईमुई = लाजवंती-नाम की बेलि।

[तीन]

श्रीराधा - बाधाहरनि-
नेहअगाधा - साथ—
निहचल नैंन - निकुंज में
नचौ निरंतर नाथ !

निहचल = (१) अपलक, भावमय। (२) शांत, एकांत।

[चार]

गुंजहार गर, गुंजकर
बंसी कर हरि, लेहु ;
उर - निकुंज गुंजाय, धर-
रोर - पुंज हरि लेहु।

गुंजहार = गुंजाओं की माला। गर = गले में। गुंजकर बंसी = [बाँस की बनी, पर] आनंदमयी मधुर ध्वनि करनेवाली मुरली। धर = धरा, जगत्। रोर = कोलाहल।

[पाँच]

अनु-अनु आपु प्रकास करि
करत अँधेरें बास ;
उर-निकुंज तम-पुंज मम,
रमिए रमानिवास !

अनु-अनु = अणु-अणु, ज़र्रा-ज़र्रा। **करत अँधेरें बास** = दिखलाई नहीं देते, अंधकार में बसना (रहना) आपको प्रिय है। **तम-पुंज** = अंधकार-समूह।

[छ]

जनम दियौ, पाल्यौ, तऊ
जन बिसरायौ नाथ !
पर्‌यौ पुहुप मसल्यौ मनौं
मधु ही के मृदु हाथ।

जन = सेवक। **पुहुप** = फूल। **मसल्यौ** = मसला हुआ, मीड़ा हुआ। **मधु** = वसंत। **मृदु हाथ** = मुलायम हाथ से।

[सात]

मम तन तव रज-राज,
तव तन मम रज-रज रमत ;
करि बिधि-हरि-हर-काज
सतत सृजहु, पालहु, हरहु।

रज = (१) धूल, (२) रजोगुण, (३) ज्योति, प्रकाश। **रमत** = (१) अनुरक्त हो रहा है, (२) लीन हो जाता है, व्याप्त हो जाता है, ग़ायब हो जाता है। **बिधि** = ब्रह्मा। **हरि** = विष्णु। **हर** = महेश। **सतत** = सर्वदा।

[आठ]

नीरस हिय - तमकूप मम ;
दोष - तिमिर बिनसाय—
रस - प्रकास भारति, भरौ,
प्यासौ मन छकि जाय।

तमकूप = अंधा कुआँ । दोष = काव्य-दोष । तिमिर = अंधकार । रस = (१) नवरस । (२) जल । प्रकास = (१) रोशनी, (२) ज्ञान । भारति = भारती, सरस्वती ।

प्रथम शतक

[१]

जोबन - बन - सुख - लीन
मन-मृग दृग-सर बेधि जनु—
धन ब्याधिनि परबीन
बाँधति अलकन - पास में।

धन = युवती, वधू। पास = जाल।

[२]

कोप-कोकनद-अवलि अलि,
उर - सर लई लगाइ;
न दिखाइ मुख - चंद पिय
दई! दई कुम्हिलाइ।

यहाँ कोप से प्रणय-कोप का तात्पर्य है, जो मान-लीला-वश होता है; जैसे—'प्रणय-कोप मालावलि तोरी' (हरिवंश)।

[३]

गुरुजन - लाज - लगाम,

सखि-सिख-साँटो हू निदरि—

पेखत* प्रिय मुख - ठाम,

टरत न टारे दृग - तुरग† ।

गुरुजन = बुज़ुर्ग । सखि-सिख-साँटो = सखी की शिक्षा का चाबुक । निदरि = कुछ न गिनकर । दृग = आँख । तुरग = घोड़ा ।

* पाठांतर 'अरत जु' ।

† पाठांतर 'टरत न प्रिय मुख-ठाम, अरत अरीले दृग-तुरग ।'

[४]

कठिन बिरह ऐसी करी,

आवति जबै नगीच—

फिरि-फिरि जाति दसा लखे

कर दृग* मीचति मीच ।

फिरि-फिरि जाति = बार-बार लौट-लौट जाती है । मीच = मृत्यु ।

* पाठांतर 'चख' ।

[५]

झपकि रहौ, धीरैं चलौ ;

करौ दूरि तें प्यार,

पीर - दब्यौ दरकै न उर

चुंबन ही के भार ।

पीर = पीड़ा ।

[६]

मति - सजनी बरजी किती,
फिरति फिराए नाहिं,
नजर - नारि नाचति निलज
आँग - आँगनहिं माहिं।

मति-सजनी = मति-रूपिणी सखी। **बरजी** = रोकी। **आँग-आँगनहिं माहिं** = अंग-रूपी आँगन में।

[७]

जोबन - देस - प्रबेस करि
बुधजन हू बौरायँ;
चंचल चख चखचख चलति,
चित हित-गुन बँधि जायँ।

बौरायँ = मतवाले हो जाते हैं, विवेक त्याग बैठते हैं। **चख** = चक्षु, आँख। **चखचख** = तकरार, कहा-सुनी, झगड़ा। **हित-गुन** = प्रेम-डोर।

[८]

तेह - मेह मुख - नभ छयौ,
चढ़्यौ भौंहँ - सुरचाप;
आँसू - बूँद गिरे, दुरयौ
हास - हंस चुपचाप।

तेह = रोष। **मेह** = बादल। **सुरचाप** = इंद्र-धनुष। (महाकवि मतिराम के सुप्रसिद्ध सवैया के आधार पर)

[९]

दमकति दरपन - दरप दरि
दीपसिखा - दुति देह ;
वह दृढ़ इकदिसि दिपत, यह
मृदु, दस दिसनि स-नेह ।

दरपन-दरप दरि = दर्पण का दर्प दलन करके । **दीपसिखा-दुति** = दीप-शिखा की प्रभावाली । **स-नेह** = (१) तेल-युक्त, चिकनी, (२) प्रेम-युक्त, प्रेम-भरी, सजीव ।

[१०]

नाह - नेह - नभ तें अली,
टारि रोस कौ राहु--
पिय-मुख-चंद दिखाहु प्रिय,
तिय - कुमुदिनि बिकसाहु ।

नाह-नेह-नभ तें = प्रेम-पात्र के प्रेम-रूपी आकाश से । **रोस** = रिस, क्रोध । **बिकसाहु** = प्रफुल्लित करो ।

[११]

कबि - सुरबैद्यन - बीर - रस
साहित - सर सरसाय ;
न्हाय जठर भारत - च्यवन
तुरत ज्वान ह्वै जाय ।

कबि-सुरबैद्यन = कवि-रूप अश्विनीकुमार । **जठर** = वृद्ध, जरठ । **भारत-च्यवन** = भारत-रूपी च्यवन ऋषि ।

[१२]

झर-सम दीजै देस-हित

झर-झर जीवन-दान ;

रुकि-रुकि यों चरसा-सरिस

दैबौ कहा सुजान !

झर = पानी का लगातार बरसना, झड़ी या झरना। जीवन = (१) ज़िंदगी, प्राण, (२) जल। चरसा = चरस। इस दोहे में देश-हित में ज़िंदगी या प्राण देने का ज़ोरदार भाव है।

[१३]

प्रभा प्रभाकर देत जेहि

साम्राजहिं बसु जाम,

ताकों हतप्रभ करि भए

गांधी लोक-ललाम।

प्रभा = प्रकाश। प्रभाकर = सूर्य। साम्राजहिं = साम्राज्य को। बसु = आठ। जाम = याम, पहर। ललाम = श्रेष्ठ।

[१४]

हिममय परबत पर परति

दिनकर-प्रभा प्रभात ;

प्रकृति-परी के उर पर-यौं

हेम हार लहरात।

प्रकृति-परी = प्रकृति-रूपिणी अप्सरा। हेम-हार = स्वर्णमाल।

[१५]

ऊँच - जनम जन, जे हरैं
नित नमि - नमि पर - पीर ;
गिरिवर तें ढरि-ढरि धरनि
सींचत ज्यों नद - नीर।

नमि-नमि = झुक-झुककर। धरनि = ज़मीन पर।

[१६]

संतत सहज सुभाव सों
सुजन सबै सनमानि—
सुधा - सरस सींचत स्रवन
सनी - सनेह सुबानि।

[१७]

भाव - भाप भरि, कलपना-
कर मन - उदधि पसारि—
कबि-रबि मुख-घन तें जगहिं
नव रस देय सँवारि।

[१८]

इड़ा - गंग, पिंगला - जमुन
सुखमन - सरसुति - संग—
मिलत उठति बहु अरथमय,
अनुपम सबद - तरंग।

सुखमन = सुषुम्ना। इस दोहे में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के मेल का गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम से मिलान किया गया है। **सबद-तरंग** = तरंगों से उठा हुआ शब्द और अनहद-नाद।

[१९]

बिषय-बात मन - पोत कों
भव - नद देति बहाइ;
पकरु नाम - पतवार दृढ़,
तौ लगिहै तट आइ।

पोत = नौका।

[२०]

कब तें, लै मन - ठीकरौ,
खरौ भिखारी द्वार!
दरसन-दुति - कन दै हरौ
मति - तम - तोम अपार।

ठीकरौ = भिक्षा-पात्र।

[२१

[२१]

देह - देस लाग्यौ चढ़न
इत जोबन - नरनाह,
पदन - चपलई उत लई
जनु दृग - दुरग - पनाह ।

देह-देस = शरीर-रूपी देश पर । **पदन-चपलई** = पैरों की चंचलता ने । **दुरग** = दुर्ग, क़िला । **पनाह** = शरण ।

[२२]

तचत बिरह-रबि उर-उदधि,
उठत सघन दुख - मेह,
नयन-गगन उमड़त घुमड़ि,
बरसत सलिल अछेह ।

अछेह = (१) जिसमें छेह अर्थात् छोर और अंतर न हो, निरंतर । (२) अत्यंत, ज़्यादा ।

[२३]

नेह - नीर भरि-भरि नयन
उर पर ढरि - ढरि जात ;
टूटि - टूटि तारक गगन
गिरि पर गिरि-गिरि जात ।

तारक = तारे, नक्षत्र ।

[२४]

नई सिकारिन - नारि,
चितवन - बंसी फेंकिकैं,
चट घूँघट - पट डारि,
चंचल चित-झख लै चली।

बंसी = मछली फँसाने का काँटा। **घूँघट-पट** = घूँघट-पट-रूपी वस्त्र। **चित-झख** = चित्त-रूपी मत्स्य। यहाँ 'पट' श्लिष्ट है।

[२५]

चीतत चिति गइ चीत-पट
चल चख - कूँची फेरि;
चटक मिटाए हू बढ़ति,
कढ़ति न चतुर चितेरि।

चीतत चिति गइ = चित्र बनाती हुई चित्रित हो गई। **चीत** = (१) चित्त, (२) चित्र।

[२६]

चित - चकमक पै चोट दै,
चितवन - लोह चलाइ—
लगन-लाइ हिय - सूत में
ललना गई लगाइ।

लाइ = अग्नि।

[२७]

लखि अनेक सुंदर सुमन,
मन न नेक पतियाइ ;
अमल कमल ही पै मधुप
फिरि-फिरि फिरि मँड़राइ।

[२८]

मृदु हँसि, पुनि-पुनि बोलि प्रिय,
कै रूखी रुख बाम—
नेह उपै, पालै, हरै,
लै बिधि - हरि - हर - काम।

रूखी रुख = उपेक्षा का भाव। उपै = उत्पन्न करती है।

नोट—बिहारी के ४ दोहों में 'रुख' शब्द आया है, और सब जगह उसने उसे स्त्रीलिंग ही लिखा है, इसीलिये यहाँ भी स्त्रीलिंग ही लिखा गया है।

[२९]

पुर तें पलटे पीय की
पर - तिय-प्रीतिहिं पेखि—
बिछुरन-दुख सों मिलन-सुख
दाहक भयौ बिसेखि।

पुर तें पलटे = नगर से लौटे हुए। पेखि = देखकर। दाहक = जलानेवाला। बिसेखि = विशेष करके।

[३०]

कढ़ि सर तें द्रुत दै गई
दृगनि देह - दुति चौंध ;
बरसत बादर - बीच जनु
गई बीजुरी कौंध ।

द्रुत = शीघ्र, जल्दी ।

[३१]

लखिकैं भारत - दीप कों
हतप्रभ - सौ असहाइ ;
दै नवजीवन - नेह निज
गंधी दियौ जगाइ ।

नवजीवन = (१) नवीन स्फूर्ति, (२) महात्मा गांधी का नवजीवन-नामक पत्र । **गंधी** = (१) गांधीजी, (२) अत्तार ।

[३२]

बीर धीर सहि तीर - झर
कटक काटि कढ़ि* जात ;
बादल - दल बरसत बिकट,
बायुयान बढ़ि जात ।

* पाठांतर 'चमू चीरि चढ़ि' ।

[३३]

रही अछूतोद्धार - नद
छुआछूत - तिय डूबि ;
साखन कौ तिनकौ गहति
क्रांति - भँवर सों ऊबि ।

[३४]

नखत - मुकत आँगन-गगन
प्रकृति देति बिखराय,
बाल हंस चुपचाप चट
चमक - चोंच चुगि जाय ।

नखत-मुकत = नक्षत्र-रूपी मोती । बाल हंस = (१) प्रातःकाल का सूर्य, (२) हंस का बच्चा ।

[३५]

सबै सुखन कौ सोत,
सतत निरोग सरीर है ;
जगत - जलधि कौ पोत,
परमारथ - पथ - रथ यहै ।

सोत = स्रोत, चश्मा । जलधि = समुद्र । पोत = जहाज़ ।

[३६]

कला वहै, जो आन पै
आपुनि छाँड़ै छाप,
ज्यों गंधी के गेह में
गंध मिलति है आप।

आन पै = दूसरे पर। **आपुनि** = अपनी।

[३७]

जाति-पाँति की भीति तौ
प्रीति - भवन में नाहिं,
एक एकता - छतहिं की
छाँह मिलति सब काहिं।

भीति = भित्ति, दीवार।

[३८]

पुसकर - रज तें मन-मुकुर
पावत इतौ उजास,
हौंन लगत बिंबित तुरत
सुचि, अनंत परकास।

पुसकर = पुष्कर-तीर्थ, जो अजमेर के पास है। यहाँ ब्रह्मा ने तप किया था। इसका माहात्म्य पद्म-पुराण और नारद-पुराण में गाया गया है।

[३९]

जग - नद में तेरी परी
देह - नाव मँझधार ;
मन - मलाह जो बस करै,
निहचै उतरै पार ।

निहचै = निश्चय-पूर्वक ।

[४०]

माया - नींद भुलाइकैं,
जीवन - सपन - सिहाइ,
आतम - बोध बिहाइ तैं
मैं - तैं ही बरराइ ।

सिहाइ = मुग्ध होकर । **बिहाइ** = त्यागकर ।

[४१]

मनौ कहे - से देत,
नयन चवाई चपल ह्वै—
तिय - तन - बन - संकेत,
लरिकाई - जोबन मिले ।

चवाई = निंदक । **तिय-तन-बन-संकेत** = नारी-शरीर-रूपी वन के संकेत-स्थल में । **लरिकाई-जोबन** = बाल्यावस्था और यौवन । इस दोहे में कवि ने बाल्यावस्था और यौवन को नायिका और नायक कथन कर उनका नारी-तन-रूप वन के संकेत-स्थल में मिलन कराया है, जिसकी चुग़ली खानेवाले चपल नेत्र हैं ।

[४२]

तन - उपबन सहिहै कहा
बिछुरन - झंझावात,
उड़्यौ जात उर - तरु जबै
चलिबे ही की बात ?

तन-उपबन = शरीर-रूपी बाग़। **बात** = श्लिष्ट पद है। इससे बात (चर्चा)-रूपी वायु का तात्पर्य है।

[४३]

मुकता सुख - अँसुआ भए ,
भयौ ताग उर - प्यार ;
बरुनि - सुई तें गूँथि दृग
देत हार उपहार ।

ताग = धागा।

[४४]

मैन - ऐन तव नैंन,
सोहैं सरसिज - से सुभग ;
ए बिकसैं दिन - रैन,
वे बिकसैं बस दिवस हीं !

मैन-ऐन = कामदेव के स्थान। **सरसिज** = कमल।

[४५]

कैसें बचिहै लाज - तरु ?
रहौ निगोड़े नैंन !
चवा भई चहुँ दिसि चलति
चारि चवाइन - सैन ।

निगोड़े = (१) पग-विहीन, (२) एक प्रकार की गाली । चवा = चारो ओर से चलनेवाली हवा ।

[४६]

कहा भयौ पिय कों, कहत—
मो मुख मुकुर - उदोत ?
यह तौ मुख-छबि-कर लहत
आप सुदीपित होत !

[४७]

प्यारी गोरोचन - तिलक
दियौ लाल के भाल ;
वाके गो रोचन लग्यौ,
भए सौत - दृग लाल ।

गो = आँख । रोचन = रोचक, प्रिय ।

[४८]

लंक लचाइ, नचाइ दृग,
पग उँचाइ, भरि चाइ,
सिर धरि गागरि, मगन, मग
नागरि नाचति जाइ।

भरि चाइ = उमंग में भरकर।

[४९]

गंगा - जमुना - सरसुती,
बचपन - जोबन - रूप—
तिय-त्रिबेनि नहिं देति केहिं
मति-महि मुकति अनूप ?

मति-महि = मति-रूपी पृथ्वी से।

[५०]

बही जु आवन-बात में,
मूँदि लिए दृग लाल;
नेह - गही उलही, रही
मही - गड़ी - सी बाल।

आवन-बात = आने की बात-रूपी वायु में।

[५१]

सिव - गांधी दोई भए
बाँके माँ के लाल;
उन काटे हिंदून - दुख,
इन जग - दृग - तम - जाल।

सिव = शिवाजी । इस दोहे में शिवाजी और गांधीजी की तुलना की गई है।

[५२]

दुष्ट - दनुज - दल - दलन कों
धरे तीक्ष्ण तरवार—
देश - शक्ति दुर्गावती
दुर्गा कौ अवतार।

दुर्गावती = गढ़ामंडला की वीर नारी दुर्गावती, जिसने अकबर बाद-शाह के कड़ामानकपुर के सूबदार आसफ़ख़ाँ से लोमहर्षण संग्राम किया था।

[५३]

हरिजन तें चाहौ भजन,
तौ हरि - भजन फजूल,
जन द्वारा ही करत हैं
राजन मिलन कबूल।

चाहौ भजन = भागना चाहो।

[५४]

जनु जु रजनि - बिछुरन रहे
पदुमिनि - आनन छाइ,
ओस-आँसु-कन सो करन
पोंछत रबि-पिय आइ।

पदुमिनि-आनन = कमलिनी-रूपिणी पद्मिनी नायिका के मुख पर। **ओस-आँसु** = ओस-रूपी अश्रु। **करन** = किरण-रूपी हाथों से। **रबि-पिय** = सूर्य-रूप पति।

[५५]

नियमित नर निज काज-हित
समय नियत करि लेय;
रजनी ही में गंध ज्यों
रजनी - गंधा देय।

नियमित नर = नियमानुकूल चलनेवाला व्यवस्थित मनुष्य। **रजनी-गंधा** = वह बेलि, जिसके पुष्प रात्रि में ही सुगंध बिखेरते हैं।

[५६]

मानस - खस - टाटी सरस
हरि कलि - ग्रीसम - पीर—
त्रयतापन - लूआनि करति
त्रयबिध, सुखद समीर।

मानस = महाकवि तुलसी-कृत रामचरित-मानस। **त्रयतापन** = दैहिक, दैविक एवं भौतिक-नामक तीन तापों को। **त्रयबिध, सुखद समीर** = शीतल, मंद और सुगंध समीर, जो तन, मन, प्राणों को सुखद है।

[५७]

सीत - घाम - लू - दुख सहत,
तऊ न तोरत तार ;
झरत निरंतर झर-सरिस,
सोइ सनेह सुचि, सार ।

तऊ = तो भी । झर = झरना । सुचि = पवित्र ।

[५८]

उर-धरकनि-धुनि माहिं सुनि
पिय-पग-प्रतिधुनि कान—
नस-नस तें नैंननि उमहि
आए उतसुक प्रान ।

उमहि आए = उमड़कर आए ।

[५९]

सत-इसटिक जग-फील्ड लै
जीवन - हाकी खेलि ;
वा अनंत के गोल में
आतम - बालहिं मेलि ।

इसटिक = हॉकी खेलने का डंडा । फील्ड = मैदान । गोल = वह स्थान, जहाँ गेंद मेल देने से विजय प्राप्त होती है । बालहिं = गेंद को ।

[६०]

ग्राह - गहत गजराज की
गरज गहत ब्रजराज—
भजे 'गरीबनिवाज' कौ
बिरद बचावन - काज।

[६१]

नई लगन किय गेह,
अली, लली के ललित तन ;
सूखत जात अछेह,
तरु ज्यों अंबरबेलि सों।

अछेह = लगातार। अंबरबेलि = आकाशवल्ली, अमरबेल।

[६२]

लेत - देत संदेस सब,
सुनि न सकत कछु कोय ;
बिना तार कौ तार जनु
कियौ दृगनु तुम दोय।

इस दोहे में नेत्रों द्वारा बेतार का तार बनाया गया है।

[६३]

नयौ नेह दै पिय ! दियौ
जीवन - दियौ जगाइ ;
किंचित सिंचित राखियौ,
ह्वै सूनों न बुझाइ।

नेह = (१) प्रेम, (२) तेल। जीवन-दियौ = जीवन का दीपक।

[६४]

झपटि लरत, गिरि-गिरि परत,
पुनि उठि-उठि गिरि जात ;
लगनि-लरनि चख-भट चतुर
करत परसपर घात!

लगनि-लरनि = प्रेम-युद्ध में।

[६५]

लरैं नैंन, पलकैं गिरैं,
चित तरपैं दिन - रात,
उठै सूल उर, प्रीति - पुर
अजब अनौखी बात!

[६६]

चख-झख तव दृग-सर-सरस-

बूड़ि, बहुरि उतराय—

बेंदी - छटके में छटकि

अटकि जात निरुपाय।

छटका = मछलियों के फँसाने का एक गड्ढा, जो दो जलाशयों के बीच तंग मेड़ पर खोदा जाता है। मछलियाँ एक जलाशय से दूसरे जलाशय में जाने के लिये कूदती हैं, और इसी गड्ढे में गिर जाती हैं। **छटकि** = छूटकर। **निरुपाय** = लाचार।

[६७]

साजन सावन - सूर - सम

और कछू देखैं न;

तुव दृग-दुति-कर-निकर किय

अंधबिंदुमय नैंन।

साजन = प्यारा, पति। **कर-निकर** = किरणों का समूह। **अंधबिंदु** = आँख के भीतरी पटल पर का वह स्थान, जो प्रकाश को ग्रहण नहीं करता, और जिसके सामने पड़ी हुई वस्तु दिखलाई नहीं देती।

[६८]

रमनी - रतननि हीर यह,

यह साँचो ही सोर;

जेती दमकति देह - दुति,

तेतौ हियौ कठोर!

हीर = हीरा।

[६९]

तिय उलही पिय-आगमन,
बिलखी दुलही देखि ;
सुखनभ-दुखधर - बीच छन
मन-त्रिसंकु - गति लेखि ।

तिय उलही = प्रसन्न हुई । सुखनभ-दुखधर-बीच = सुख-रूपी आकाश और दुःख-रूपी धरती के मध्य की । मन-त्रिसंकु-गति = मन की त्रिशंकु-जैसी गति । त्रिशंकु सूर्यवंश के वह पौराणिक नरेश, जिन्हें विश्वामित्र ने सदेह स्वर्ग पहुँचाने का प्रयत्न किया, और इंद्र ने पृथ्वी पर पटक दिया । दोनो शक्तियों के एक दूसरे के विरुद्ध प्रभाव से बेचारे बीच ही में लटक गए ।

[७०]

चख - तुरंग माते इते
छाके छबि की भाँग ;
सुमति - छाँद छाँदहुँ, तऊ
छिन - छिन भरत छलाँग ।

माते = मदोन्मत्त हो गए । छाँद = रस्सी से । छाँदना = सटाकर ऐसे पैर बाँधना कि दूर तक न भाग सके ।

[७१]

कलिजुग ही मैं मैं लखी
अति अचरजमय बात—
होत पतित - पावन पतित,
छुवत पतित जब गात ।

[७२]

गांधी - गुरु तें ग्याँन लै,
चरखा - अनहद - जोर—
भारत सबद - तरंग पै
बहत मुकति की ओर।

भारत = (१) ज्ञान से रत, (२) भारत-देश। मुकति = (१) मोक्ष, (२) स्वाधीनता।

[७३]

जीवन - धन - जय - चाह,
धन कंकन - बंधन करति ;
उत तन रन - उतसाह,
इत बिछुरन की पीर मन।

धन = युवती, पत्नी, वधू।

[७४]

दिन-नायक ज्यों-ज्यों बढ़त
कर अनुराग पसारि,
त्यों-त्यों लजि सिमटति, हटति
निसि - नवनारि निहारि।

दिन-नायक = सूर्य-रूपी नायक। बढ़त = आकाश में ऊँचे चढ़ता है, आगे बढ़ता है। कर = (१) किरण, (२) हाथ। पसारि = फैलाकर। निसि-नवनारि = रात्रि-रूपिणी नव-बाला।

[७५]

होत निरगुनी हू गुनी
बसे गुनी के पास;
करत लुएँ खस सलिलमय
सीतल, सुखद, सुबास !

निरगुनी = गुण-हीन ।

[७६]

बिना ग्याँन कौ करम कहुँ
तारि सकै संसार ?
कहा काट करिहौ, जु कर
धार बिना करवार !

[७७]

सुलभ सनेह न ब्याह सों,
सुलभ नेह सों ब्याह;
ब्याह किए पुनि नेह की
एक नेह ही राह ।

[७८]

अगम सिंधु जिमि सीप-उर
मुकता करत निवास,
तिमिर-तोम तिमि हृदय बसि
करि हृदयेस ! प्रकास ।

[७९]

गई रात, साथी चले,
भई दीप - दुति मंद,
जोबन - मदिरा पी चुक्यौ,
अजहुँ चेति मति - मंद !

[८०]

जगि-जगि,बुझि-बुझि जगत में
जुगनू की गति होति ;
कब अनंत परकास सों
जगिहै जीवन - जोति ?

इस दोहे में अनंत ज्योति से संयोग प्राप्त करने को उत्सुक, पुनः-पुनः जन्म-मरणशील जीवात्मा की वेदना का वर्णन है ।

[८१]

नव-तन-देसहिं जीति जनु
पटु जोबन - नृपराज—
निरमित किय कुच-कोट जुग
आपुनि रच्छा - काज।

[८२]

नैंन - आतसी काँच परि
छबि - रबि - कर अवदात—
झुलसायौ उर - कागदहिं,
उड़यौ साँस - सँग जात।

आतसी काँच = आतिशी शीशा। **अवदात** = श्वेत, सुंदर। **साँस** = (१) श्वास, (२) हवा।

[८३]

पलक पोंछि पग - धूरि हौं
डारी दोसन धूरि ;
देह धूरि जापै करी,
लग्यौ उड़ावन धूरि।

डारी दोसन धूरि = दोषों को छुपाया—भुलाया। **देह धूरि करी** = शरीर को धूल में मिला दिया।

[८४]

बिंब बिलोकन कौं कहा

झमकि झुकति झर-तीर ?

भोरी, तुव मुख-छबि निरखि

होत बिकल, चल नीर !

भोरी = भोली ।

[८५]

मन - मानिक - कन देहु

बिरह - ताप - तापित तुरत,

मुरछित कंचन - देहु

जिला देहु पुनि, पुन लहौ ।

मानिक-कन = जिससे सुनार सोने पर जिला देते हैं । बिरह-ताप = वियोगाग्नि । देहु = शरीर । जिला देहु = (१) जिला दो, आबदार बना दो, (२) सजीव करो । पुनि = फिर । पुन = पुण्य ।

[८६]

हृदय कूप, मन रहँट, सुधि-

माल माल, रस राग,

बिरह वृषभ, बरहा नयन,

क्यों न सिंचै तन - बाग ?

सुधि = स्मृति । माल = घट-माला । बरहा = सिंचाई के लिये बनी हुई नाली ।

[८७]

नजर - तीर तैं नैंन - पुर
रच्छित राखन - हेत—
जनु काजर-प्राचीर पिय—
तिय - तन - भू - पति—देत।

काजर-प्राचीर = काजल का परकोटा।

[८८]

उत उगलत ज्वालामुखी
जब दुरबचनन - आग,
उठत हृदय - भू - कंप इत,
ढहत सुदृढ़ गढ़ - राग।

[८९]

बस न हमारौ, बस करहु,
बस न लेहु प्रिय लाज;
बसन देहु, ब्रज मैं हमैं
बसन देहु ब्रजराज!

(देव कवि के कवित्त के आधार पर)

बस न = वश नहीं। बस करहु = (यह लीला) समाप्त करो। बसन देहु = वस्त्र दे दो। बसन देहु = निवास करने दो।

[६०]

लरिकाई - ऊषा दुरी,

झलक्यौ जोबन - प्रात,

छई नई छबि - रबि - प्रभा

बाल - प्रकृति के गात।

[६१]

भारत - सरहिं सरोजिनी

गांधी - पूरब - ओर—

तकि सोचति—'ह्वै है कबै

प्रिय स्वराज - रबि - भोर ?'

सरोजिनी = श्लिष्ट पद है, जिससे भारत की प्रसिद्ध नेत्री श्रीसरोजिनी नायडू और कमलिनी दोनो का अर्थ निकलता है। **पूरब** = पूर्व-दिशा।

[६२]

भारत - भूधर तें ढरति

देस - प्रेम - जल - धार,

आर्डिनेंस - इसपंज लै

सोखन चह सरकार * !

भूधर = पहाड़, पर्वत। **आर्डिनेंस-इसपंज** = आर्डिनेंस-रूपी स्पंज। स्पंज झावें की तरह का एक प्रकार का बहुत मुलायम और रेशेदार पदार्थ होता है, जिसमें बहुत-से छोटे-छोटे छेद होते हैं। इन्हीं छेदों से वह बहुत-सा पानी सोख लेता है। और, जब यह दबाया जाता है, तब इसमें का सारा पानी बाहर निकल जाता है।

* पाठांतर 'सोखि रही सरकार !'

[६३]

पर - राष्ट्रन - अरि - चोट तें
धन - स्वतंत्रता - कोट—
तटकर - परकोटा बिकट
राखत अगम, अगोट।

धन-स्वतंत्रता-कोट = आर्थिक स्वातंत्र्य-रूपी क़िला। **तटकर-परकोटा** = बाहर से आनेवाले माल (आयात) पर राज्य द्वारा लगाया गया कर-रूप परकोटा। **अगोट राखत** = छिपा रखता है।

[६४]

दिनकर-पुट - बर - बरन लै,
कर - कूँचीन चलाइ,
प्रकृति - चितेरो रचति पटु
नभ-पटु साँझ सुभाइ।

दिनकर-पुट = सूर्य-रूपी गोल पात्र, जिसमें रंग भरा हुआ है। **बर-बरन** = श्रेष्ठ वर्ण या रंग। **कर-कूँचीन** = किरणों की कूँचियों को। **पटु** = प्रवीण। **नभ-पटु** = आकाश के पट पर। **सुभाइ** = (१) स्वभाव से, (२) उत्तम भाव से।

[६५]

सुखद समै संगी सबै,
कठिन काल कोउ नाहिं;
मधु सोहैं उपबन सुमन,
नहिं निदाघ दिखराहिं।

मधु = वसंत। **निदाघ** = ग्रीष्म।

[९६]

संगत के अनुसार ही
सबकौ बनत सुभाइ;
साँभर में जो कछु परै,
निरो नोंन ह्वै जाइ।

सुभाइ = स्वभाव । **साँभर** = राजपूताने की एक झील, जहाँ से साँभर-नामक नमक निकलता है। **नोंन** = लवण, नमक ।

[९७]

सतसैया के दोहरा
चुनें जौंहरी - हीर—
जोति - धरे, तीछन, खरे,
अरथ - भरे गंभीर।

हीर = हीरा । **जोति** = (१) ज्ञान, (२) प्रभा, चमक । **तीछन** (**तीक्ष्ण**) = (१) तेज़, बुद्धि-युक्त, प्रतिभा-पूर्ण, (२) तेज़ नोकवाला । **खरे** = (१) विशुद्ध, (२) चोखे, बढ़िया । **अरथ** (**अर्थ**) = (१) व्यंग्यादि काव्यार्थ, (२) धन । **गंभीर** = (१) गहरा, (२) घना, प्रचुर ।

[९८]

नीच मीच कौं मत कहै,
जनि उर करै उदास;
अंतरंगिनी प्रिय अली
पहुँचावति पिय - पास।

अंतरंगिनी प्रिय अली = अंतरंग-भेद जाननेवाली प्यारी सखी ।

[९९]

जनम - मरन - करियन - जुरी
जीवन - लरी अपार—
नियति-नटी कसि, लसि रही
रिझै रिझावनहार* ।

जनम-मरन-करियन-जुरी = जन्म-मरण की कड़ियों से जुड़ी । **जीवन-लरी अपार** = (१) अनंत जीवों की लड़ी, (२) अनंत जीवनों (योनियों) की लड़ी ।

* पाठांतर 'प्रकृति-परी पहरति, लसति ।'

[१००]

पट, मुरली, माला, मुकट
धरि कटि, कर, उर, भाल—
मंद - मंद हँसि हिय बसौ
नंद दुलारे लाल ।

(बिहारी के आधार पर)

---

[१०१]

सुख-सँदेस के ज्वार चढ़ि
आई सखो सुजान,
लागी आनँद - सिंधु में
घन बूड़न - उतरान।

[१०२]

उर-पुर अरि - परनारि तें
रच्छित राखौ लाल!
नतरु बियोग - कृसानु में
जौहर ह्वैहै बाल।

अरि-परनारि = शत्रु-रूपिणी अन्य नारी। **कृसानु** = अग्नि। **जौहर ह्वैहै** = चिता प्रज्वलित कर जल मरेगी।

[१०३]

मन-कानन में धँसि कुटिल,
काननचारी नैंन—
मारत मति-मृगि मृदुल, पै
पोसत मृगपति - मैंन!

मन-कानन = मन-रूपी वन। **काननचारी नैंन** = (१) कानों तक फैले हुए नेत्र, (२) वन में विचरण करनेवाले अन्यायी (नय+न अर्थात् नय नहीं है जिनमें, ऐसे अन्यायी व्याध)। **मति-मृगि** = मति-रूपिणी मृगी। **मृगपति-मैंन** = कामदेव-रूपी सिंह।

[१०४]

कियौ कोप चित-चोप सों,
आई आनन ओप,
भयौ लोप पै मिलत चख,
लियौ हियौ हित छोप।

चोप = इच्छा, चाव। **ओप** = आभा। **छोप लियौ** = आच्छादित कर लिया।

[१०५]

छन-छन छबि की छाक सों

छलिया, छैल ! छकाइ—

छँटे-छँटे अब फिरत क्यों

मोह - मूरछा छाइ ?

छाक = नशा । छँटे-छँटे फिरना = दूर-दूर रहना । कुछ संबंध या लगाव न रखना ।

[१०६]

दंपति - हित - डोरो खरी

परी चपल चित - डार,

चार चखन - पटरी अरी,

झोंकनि झूलत मार ।

मार = काम ।

[१०७]

बिरह-बिजोगिनि कौ करत

सपन सजन - संजोग,

है समाधि हू सों सरस

नींद, न नींदन - जोग ।

संजोग = मिलन । जोग = योग्य, लायक़ ।

[१०८]

राग-राग रागत रुचिर
पिय हिय - तंत्री - संग;
सजनी री, नीरस निरी,
जमत न तो पै रंग।

राग-राग = अनुराग का राग।

[१०९]

ध्यान धरन दै, धर अधर
धीरैं ही अधरानि;
उमड़ि उठै उर - पीर जनि
प्रिय - चुंबन पहचानि।

[११०]

हौं सखि, सीसी आतसी,
कहति साँच - ही - साँच;
बिरह - आँच खाई इती,
तऊ न आई आँच!

[१११]

पुरखन कौ धन दै दियौ
देस - प्रेम की राह ;
त्याग - निसेनी चढ़ि चढ़े
चित - चित भामासाह !

[११२]

करी करन अकरन करनि
करि रन कवच - प्रदान ;
हरन न करि अरि-प्रान निज
करनि दिए निज प्रान।

करन = दानवीर कर्ण, जिन्होंने अपनी माता कुंती को अपना प्राण-रक्षक कवच प्रदान कर दिया था, और फिर अर्जुन के हाथों मारे गए थे। **करनि** = करनी। **करनि** = हाथों से।

[११३]

ईसाई, हिंदू, जवन,
ईसा, राम, रहीम,
बैबिल, बेद, कुरान में
जगमग एक असीम।

जवन = यवन, मुसलमान । **बैबिल** = बाइबिल । **असीम** = अनंत, परमात्मा ।

[११४]

लखि जग-पंथी अति थकित,
संझा - बाँह पसारि—
तम-सरायँ में दै रही
छाँहँ छपा - भटियारि ।

पंथी = यात्री । संझा-बाँह पसारि = संध्या-रूपिणी बाहें फैलाकर । तम-सरायँ = अंधकार-रूपी सराय । छाँहँ = आश्रय, छाया । छपा-भटियारि = रात्रि-रूपिणी भटियारी ।

[११५]

बिन बिबेक कौ मन भयौ
बिन लंगर कौ पोत ;
भ्रमत फिरत भव-सिंधु में,
छिन न कहूँ थिर होत !

पोत = नाव, जहाज़ ।

[११६]

हिंदी - द्रोही, उचित ही
तुव अँगरेजी - नेह,
दई निरदई पै दई
नाहक हिंदी देह !

हिंदी = हिंदी-भाषा । दई निरदई = निर्दय ब्रह्मा । हिंदी = हिंदुस्थानी ।

[११७]

होयँ सयान अयान हू
जुरि गुनवान - समीप ;
जगमग एक प्रदीप सों
जगत अनेक प्रदीप ।

[११८]

हृदय - सून तें असत-तम
हरौ, करौ जो सून,
सून - भरन के हित झपटि
झट आवेगौ सून ।

हृदय-सून = हृदयाकाश, घटाकाश । **असत-तम** = असत् माया का अंधकार । **सून** = शून्य, एकांत, ख़ाली । **सून-भरन के हित** = रिक्त स्थान (Vaccum) को भरने के लिये । **सून** = शून्य, पूर्ण, परमात्मा ।

[११९]

दरसनीय सुनि देस वह,
जहँ दुति - ही - दुति होइ,
हौं बौरौ हेरन गयौ,
बैठ्यौ निज दुति खोइ ।

बौरौ = पागल । **हेरन** = (१) खोजने, (२) देखने ।

[१२०]

एक जोति जग जगमगै
जीव - जीव के जीय ;
बिजुरी बिजुरीघर-निकसि
ज्यों जारति पुर - दीय ।

जीय = जी, अंतःकरण । **दीय** = दीप, दिए ।

[१२१]

बरजोरी गोरी गही
गोकुल - गैल गुपाल ;
दधि ढरक्यौ, धरक्यौ हियौ,
सरक्यौ घूँघट भाल ।

[१२२]

रस - रबि - बस दोऊन के
जे हिलि-मिलि खिलि जात,
वेई तुव मुख - चंद लखि
चख - जलजात लजात ।

रस = प्रेम । **चख-जलजात** = नेत्र-कमल ।

[१२३]

जनु नवबय-नृप-मदन-भट
तिय-तन - धर - जय - हेतु—
हनत जु सर, उर-पुर उठत
उरज - समरपन - केतु।

नवबय-नृप-मदन-भट = यौवन-नरेश का कामदेव-रूपी योद्धा। **धर** = धरा, पृथ्वी। **उर-पुर** = वक्षःस्थल-रूपी नगर। **समरपन-केतु** = समर्पण-केतु। वह ध्वजा, जो आक्रमणकारी के भय से साहस-हीन हो आत्मसमर्पण कर देने के उद्देश्य से दिखलाई जाती है।

[१२४]

चीत - चंग चंचल उड़ै
चट चौकस ह्वै जाय;
ढील दिए जनि सजनि, कहुँ
तरुन - पुंज उरझाय।

तरुन = (१) नवयुवक, (२) पेड़।

[१२५]

एती गरमी देखिकै
करि बरसा - अनुमान—
अली भली पिय पैं चली
लली - दसा धरि ध्यान।

नोट—(१) गरमी हो रही है, अतएव पानी बरसेगा। विरहिणी नायिका को वर्षा अधिक सताएगी। इसलिये नायक को बुलाने चली। (२) नायिका गरम (नाराज़) हो रही है, अब रुदन शुरू होगा। अतएव अपराधी नायक को बुलाने चली।

[१२६]

सुमन चुनति, आँचर भरति,
गुहति मनोहर माल,
बिलसति बनदेवी - सरिस
बन-बिच बिचरति बाल।

[१२७]

फिरि-फिरि उत खिंचि जात चख
रूप - रहचटैं * - ओर ;
घूमि - घूमि पैरत चपल
ज्यों जल-अलि इक ओर।

रहचटैं = चाह, चसका, लिप्सा। **जल-अलि** = पानी का भँवरा, जो काले कीड़े के रूप में खटमल-जैसा होता है। यह एक ही ओर घूम-घूमकर तैरता है।

* पाठांतर 'लालसा' अथवा 'राग के'।

[१२८]

तरुन, तरुनई - तरु सरस
काटि न कलुस - कुठार ;
सींचि सुजीवन, सुमन धरि,
करि निज सफल बहार।

कलुस = कलुष, पाप-कर्म। **सुजीवन** = (१) उत्तम जीवन, (२) उत्तम जल। **सुमन** = (१) अच्छा मन, उत्तम विचारों से पूर्ण विषय-वासना-रहित मन, (२) पुष्प। **सफल** = (१) फल-युक्त, (२) सार्थक। **बहार** = (१) आनंद, उचित संभोग, (२) वसंत।

[१२९]

सखि, जीवन सतरंज-सम,
सावधान ह्वै खेलि,
बस जय लहिबौ ध्यान धरि,
त्यागि सकल रँगरेलि।

[१३०]

जोबन-उपबन-खिलि अली,
लली - लता मुरझाय!
ज्यों - ज्यों डूबे प्रेम - रस,
त्यों - त्यों सूखति जाय।

[१३१]

को तो - सो जग - बीच
दानबीर दारा भयौ?
नाच रही सिर मीच,
तऊ न छाँड़ी बान निज।

[१३२]

दुष्ट दुसासन दलमल्यौ
भीम भीमतम - भेस,
पाल्यौ प्रन, छाक्यौ रकत,
बाँधे कृस्ना - केस।

दलमल्यौ = मसल डाला, मार डाला। **भीम** = पांडव भीमसेन, जो महाभारत के युद्ध में पांडव-सेना के सेनापति थे। जब जुए में पांडवों के हार जाने पर दुष्ट दुर्योधन की आज्ञा से कौरव-सभा में दुःशासन ने द्रौपदी के केश पकड़कर खींचे थे, और वस्त्र खींचकर उसे नग्न करना चाहा था, तब महावीर भीम ने दुःशासन का रक्त-पान करने और उसी रक्त से द्रौपदी के बालों को बँधवाने का प्रण किया था। अंत में भीम ने अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन किया था। **भीमतम** = सबसे अधिक भयानक। **कृस्ना** = द्रौपदी।

[१३३]

सासन - कृषि तें दूर
दीन प्रजा - पंछी रहैं,
सासक - कृषकन क्रूर
आर्डिनेंस - चंचौ रच्यौ।

चंचौ = धोखा।

[१३४]

भजत तजत निसि-संग तम,
लखि निसिपति-मुख - चंद,
अंग-नखत लघुदुति दुरत,
सुदुति परत दुतिमंद।

अंग = पक्ष। **नखत** = नक्षत्र।

[१३५]

पागल कौं सिच्छा कहा,
साधू कौं तरवार ?
कहा अंध कौं आरसी,
त्यागी कौं घर - बार ?

[१३६]

संपति चहत न मान - सुख,
मुकति - ध्यान हू नाहिं ;
उदित होइ हिय बात जब,
मुदित होइ कहि जाहिं ।

[१३७]

समुझि धरम करि करम, धरि
न फल-चाह मन माँहँ ;
दिवस, रात, तरु देत ज्यों
प्रभा, अँधेरो, छाँहँ ।

[१३८]

स्याम-सुरँग-रँग-करन - कर
रग - रग रँगत उदोत ;
जग-मग जगमग जगमगत,
डग डगमग नहिं होत।

सुरँग-रँग-करन-कर = प्रेम-रूपी रंग की किरणों के हाथ । **उदोत** = प्रकाश से । **जग-मग** = जग का मार्ग । **जगमग जगमगत** = जग-मग-जगमग होता है, प्रकाश झिलमिलाता है । **डग** = पद । **डगमग नहिं होत** = नहीं डिगता, नहीं थरथराता, नहीं फिसलता ।

[१३९]

पैरत - पैरत हौं थक्यौ
भव - सागर के बीच ;
कब पाऊँगौ देस वह,
जहाँ न जनम न मीच।

मीच = मृत्यु ।

[१४०]

दुरगम दुरग - प्रबेस में
मानस मान न हार ;
राम - नाम की तोप तें
तोरि लेहु दृढ़ द्वार।

मानस = मन ।

[१४१]

सखी, दूरि राखौ सबै
दूती - करम - कलाप ;
मन-कानन उपजत - बढ़त
प्यार आप - ही - आप ।

मन-कानन = मन-रूपी वन । **प्यार** = (१) प्रेम, (२) एक वृक्ष-विशेष, जिसका बीज चिरौंजी है। मध्यभारत एवं बुंदेलखंड में इस वृक्ष को अचार का वृक्ष भी कहते हैं। यह वृक्ष जंगल में अपने आप पैदा होता है, किसी को इसे रोपना नहीं पड़ता ।

[१४२]

खरी साँकरी हित - गली,
बिरह - काँकरी छाइ—
अगम करी तापैं अली,
लाज - करी बिठराइ ।

लाज-करी = लज्जा-रूपी हाथी ।

[१४३]

केहि कारन कसकन लगी
भले मनचले लाल !
आँख - किरकिरी होइ यह,
आँख - पूतरी बाल ?

आँख-किरकिरी = आँखों में पड़कर खटकनेवाला तृण-कण, रज-कण आदि । वह, जिसे देखना न चाहें । **आँख-पूतरी** = प्रिय व्यक्ति ।

[१४४]

आवत हित-बित-भीख - हित

पति चख - झोरी डारि,

देहु नयन-कर कोप-कन,

मन - भाजन सुसँभारि।

बित्त = धन। झोरी डालना = भिक्षा माँगने के लिये झोली उठाना, साधु या भिक्षुक हो जाना।

[१४५]

सोवत कंत इकंत, चहुँ

चितै रही मुख चाहि ;

पै कपोल पै ललक * लखि

भजी लाज - अवगाहि।

(एक संस्कृत-श्लोक और बिहारी के दोहे के आधार पर)

रही मुख चाहि = प्रेम से मुँह ताकती रह गई। अवगाहि = नहाकर।

* पाठांतर 'पुलक'।

[१४६]

चख-चर चंचल, चार मिलि,

नवल-बयस - थल आइ—

हित-झँपान लै चित-पथिक

मद - गिरि देत चढ़ाइ।

चर = (१) नौकर, (२) दूत। नवल-बयस = नवयौवन। झँपान वह सवारी, जिसे चार आदमी कंधे पर लेकर पहाड़ पर चढ़ाते हैं। पहाड़ी स्थानों पर अमीर लोग इस पर चढ़कर जाते हैं। मद = मदन, कामदेव, नशा, हर्ष।

[१४७]

बार१ बित्यौ लखि, बार२ झुकि
बार३ बिरह के बार४ ;
बार-बार५ सोचति—'कितै
कीन्हीं बार६ लबार७ ?'

१ दिन, समय । २ द्वार, दरवाज़ा । ३ बाला । ४ भार, बोझा । ५ फिर-फिर । ६ देर । ७ गप्पी, झूठा ।

[१४८]

समय समुझि सुख-मिलन कौ,
लहि मुख - चंद - उजास,
मंद - मंद मंदिर चली
लाज - मुखी पिय - पास ।

उजास = प्रकाश, प्रभा ।

[१४९]

गुंजनिकेतन - गुंज तैं
मंजुल वंजुल - कुंज,
बिहरैं कुंजबिहारि तहँ
प्रिय, प्रबीन, रस-पुंज ।

गुंजनिकेतन = भौंरा । वंजुल = अशोक का पेड़ ।

[१५०]

मोह-मूरछा लाइ, करि
चितवन - करन - प्रयोग,
छबि - जादूगरनी करति
बरबस बस चित - लोग ।

करन = किरण-रूपी हाथ । **लोग** = व्यक्ति ।

[१५१]

छुट्यो राज, रानी बिकी,
सहत डोम - गृह दंद,
मृत सुत हू लखि प्रियहिं तें
कर माँगत हरिचंद !

दंद = दुःख, कष्ट । **मृत** = मरा हुआ । **प्रियहिं तें** = प्रिया से भी ।

[१५२]

छुआछूत - नागिन - डसी
परो जु जाति अचेत,
देत मंत्रना - मंत्र तें
गांधी - गारुड़ि चेत ।

मंत्रना-मंत्र = उपदेश अथवा सम्मति-रूपी मंत्र । **गारुड़ि (गारुड़ी)** = साँप का विष उतारनेवाला ।

[१५३]

कूटनीति - पच्छिम लखत
राष्ट्रसंघ - रबि अस्त—
अस्त्र - सस्त्र - दुति - बृद्धि में
राष्ट्र - नखत भे व्यस्त।

[१५४]

बात - भूलि रे फूल यों
निज श्री - भूलि न फूलि,
काल कुटिल कौ कर निरखि,
मिलन चहत तें धूलि।

बात = (१) हवा, वायु, (२) बातें। श्री = (१) शोभा, (२) संपत्ति। न फूलि = गर्व न कर।

[१५५]

होत अथिर रितु-सुमन-सम
सदा बाहरी रूप;
पर उर - अंतर - रूप चिर
सदाबहार अनूप।

[१५६]

डारें हास - फुहार - कन
करन - कियारिन माहिं—
सींच कबि - माली सुरस,
रसिक - सुमन बिकसाहिं।

करन = कर्ण, कान। **सुमन** = (१) सुंदर मन, (२) पुष्प।

नोट—यह दोहा द्विवेदी-मेला (प्रयाग) में, हास-परिहास-सम्मेलन के सुअवसर पर, वहीं तत्काल लिखे और पढ़े गए दोहों में से है।

[१५७]

सतसंगति लघु - बंस हू
हरि अवगुन गुन देति;
केहि न कान्ह-अधरन-धरी
बंसो बस करि लेति?

लघु-बंस = (१) ओछा कुल, (२) तुच्छ बाँस।

[१५८]

लैंन - दैंन सपनैं भयौ
बहु बिचार - मन माँहिं;
आँख खुली, तो लखि पर्‌यौ
हानि - लाहु कछु नाहिं।

(महाकवि ग़ालिब के आधार पर)

आँख खुली = चेत हुआ। **लाहु** = लाभ।

[१५९]

नंदलाल - रँग - आलरँग
चीत - चीर रँगि लेहु ;
जगत - आलजंजाल कौ
दीमक लगन न देहु ।

रँग = प्रेम । **आलरँग** = इस रंग में रँगे गए कपड़े पर दीमक नहीं लगती । **चीत** = चित्त । **आलजंजाल** = झंझट, बखेड़ा, माया ।

[१६०]

तू हेरत इत-उत फिरत,
वह घट रह्यौ समाइ ;
आपौ खोवै आपनों,
मिलै आप ही आइ ।

घट = हृदय । **आपा** = अहंत्व, अहंकार । **आप ही** = स्वयं परमात्मा ।

[१६१]

अंग-रंग नहिं लखि परति
रंचक चंपक - माल ;
जानि परति तब, जब लगति
लाल - हिये नव बाल ।
(तुलसी और बिहारी के आधार पर)

रंचक = थोड़ा ।

[१६२]

धरि हरि-छबि हिय-कोस में
गोपी, हित - पट गोइ ;
बिरहा - डाकू, समय-ठग
तेहि हरि सकैं न कोइ ।

हिय-कोस = हृदय का ख़ज़ाना । हरि सकैं = हरण कर सकें ।

[१६३]

जगत जोति प्रेमी पतँग
जारति जाय लुभाय ?
हँसि न दीपिका, लखि अरी
तुव जीवन हू जाय !

जाय = वृथा । जीवन = (१) प्राण, ज़िंदगी, (२) घी ।

[१६४]

सुक सींचत स्रवननि सुधा
कहि-कहि प्रिय पिय-नाम ;
पुनि-पुनि तेहि रस-लालसा
मरिच खवावति बाम ।

सुक = तोता । स्रवननि = कानों में । मरिच = मिर्च । बाम = स्त्री ।

[१६५]

झीनें अंबर झलमलति
उरजनि - छबि छितराइ ;
रजत-रजनि जुग चंद्-दुति
अंबर तें छिति छाइ।

अंबर = वस्त्र । **रजत-रजनि** = चाँदनी रात। **अंबर तें** = (१) आकाश से निकलकर, (२) बादल से निकलकर।

[१६६]

जनु जिय जोबन - बटपरा
तिय - तन - रतन लुभाइ—
लियौ चहत, तातें गयौ
मन - स्वामी अकुलाइ।

[१६७]

सर लगि छत करि, हरि रकत,
हतप्रभ करत सुअंग ;
चितवन सुख भरि, चपल करि,
चित पर चीतत रंग।

छत = घाव । **हतप्रभ** = प्रभा-हीन, श्री-विहीन। **रंग** = प्रेम-रंग।

[१६८]

धाय धरति नहिं अंग जो
　　मुरछा - अली अयान,
उमगि प्रान-पति - संग तो
　　करतो प्रान पयान।

अयान = अजान। पयान = गमन।

[१६९]

बिरह-उदधि-दुख - बीचि तें
　　नारी - नाव बचाइ—
लई आइ पिय-ज्वार जनु
　　अलि, उर - तीर लगाइ।

पिय-ज्वार = प्रिय पति-रूपी ज्वार।

[१७०]

लहि पिय-रबि तें हित-किरन
　　बिकसित रह्यौ अमंद;
आइ बीच अनरस-अवनि
　　किय मलीन मुख - चंद।

पिय-रबि = प्रिय पति-रूपी सूर्य। बिकसित = खिला। अनरस-अवनि = रुष्टता-रूपिणी पृथ्वी।

[१७१]

जुगन - जुगन बिछुरे रहे
हम तें हरिजन लोग,
गाँधी - जोगी - जोग किय
छन में जुगल - सँजोग।

[१७२]

जुद्ध - मद्ध बल सों सबल
कला दिखाई देति;
निरबल मकरिहु जाल बुनि
सरप - दरप हरि लेति।

मकरिहु = मकड़ी भी। **सरप-दरप** = सर्प का घमंड।

[१७३]

अपनेहिं अंग अछूत करि
पर - अछूत भे लोय,
जो जैसी करनी करै,
तैसी भरनी होय।

[१७४]

चंचल अंचल छलछलति
जिमि मुख - छबि अवदात,
सित घन छनि-छनि झलमलति
तिमि दिनमनि-दुति प्रात।

[१७५]

निरबल हू दल बाँधिकैं
सबलहिं देत हराइ;
ज्यों सींगन सों गाय-गन
बन - पति देत भगाइ।

[१७६]

कबि - कोबिद पालत हुते
जे नरपाल सुजान,
पालत आज खुसामदी,
मोटर, गनिका, स्वान।

[१७७]

मिलत न भोजन, नगन तन,
मन मलीन, पथ - बासु,
निरधनता साकार लखि
ढारति करुनहु आँसु।

करुनहु = करुणा भी।

[१७८]

निठुर, नीच, नादान
बिरह न छाँड़त संग छिन ;
सहृदय सजनि सुजान
मीच, याहि लै जाहु किन ?

[१७९]

हीय-दीय-हित-जोति लहि
अग जग - बासी स्याम !
दृग - दरपन बिंबित करहु
निज छबि आठौं जाम।

हीय दीय = हृदय-रूपी दिया।

[१८०]

जोति - उघरनी तें अजहुँ
खोलि कपट - पट - द्वारु—
पंजर - पिंजर तें प्रभो,
पंछी - प्रान उबारु।

पंजर-पिंजर = शरीर-रूपी पिंजड़ा।

[१८१]

बिरह-सिंधु उमड़्यौ इतौ
पिय - पयान - तूफान,
बिथा - बीचि - अवली अली,
अथिर प्रान - जलजान।

पिय-पयान-तूफान = प्रिय पति का गमन-रूपी तूफ़ान। **बिथा-बीचि-अवली** = व्यथा की लहरों की क़तार में। **प्रान-जलजान** = प्राण-रूपी जहाज़।

[१८२]

खरी दूबरी तिय करी
बिरह निठुर, बरजोर,
चितवन चढ़ति पहार जनु
जब चितवति मम ओर।

[१८३]

सहज सकुच-सुखमा-सहित
सोहत रूप अनूप ;
लाजवती ललना लता
लाजवती - अनुरूप ।

सुखमा = शोभा, छटा । **अनुरूप** = समान ।

[१८४]

राधावर - अधरन - धरी
बाँसुरिया बौराइ—
प्रतिपल पियत पियूख, पै
बिसम बिसहिं बरसाइ ।

अधरन = ओठ । **पियूख** = अमृत ।

[१८५]

अलि, चंचल चित-फंद में
अद्‌भुत बंद लखाइ ;
चालक चतुर - चलाँक हू
बाँधन चलि बँधि जाइ !

फंद = फंदा । **चालक** = चलानेवाला ।

[१८६]

है कलिहारी - तूल,
कलहारी, पिय-कल-हरनि ;
मुख तौ सुंदर फूल,
हिये - मूल बिस - गाँठ पै।

कलिहारी = एक बिषैला पौधा, जिसका फूल अत्यंत सुंदर होता है, और जड़ में बिषैली गाँठें रहती हैं। तूल = तुल्य, समान। कलहारी = कलहकारिणी, कर्कशा।

[१८७]

कहा समुझि इनकौं दियौ
लोयन लोयन - नाम,
लोय - सरिस बालम - बिरह
बरत जु बिना बिराम।

लोयन = लोगों ने। लोयन = (१) लोचन, (२) लोय (लौ) नहीं है जिनमें। लोय = लौ।

[१८८]

सुरस - सुगंध - बिकास-बिधि
चतुर मधुप मधु - अंध !
लीन्हों पदुमिनि-प्रेम परि
भलो ज्ञान कौ धंध !!

[१८९]

जोबन - मकतब तौ अजब
करतब करत लखाय;
पढ़ैं प्रेम - पोथी सुमति,
पै मति मारी जाय!

सुमति = अत्यंत बुद्धिमान्।

[१९०]

गुंजनिकेतन - गुंज - जुत
हुतौ कितौ मनरंज!
लुंज - पुंज सो कुंज लखि
क्यों न होइ मन रंज?

गुंजनिकेतन = भौंरा। मनरंज = मनोरंजन करनेवाला। लुंज = ठूँठ।

[१९१]

देस कला नव बिसतरत,
हरत ताप चहुँ ओर,
करत प्रफुल्ल प्रफुल्लचँद
चतुरन - चित्त - चकोर।

प्रफुल्लचँद = बंगाल के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता सर प्रफुल्लचंद्र राय। कला, ताप, प्रफुल्ल, प्रफुल्लचंद, ये चारो श्लिष्ट पद हैं।

[१६२]

दीसत गरभ स्वराज कौ
स्वेत पत्रिका - पेट ;
सब गुन-जुत कछु जुगन में
ह्वै है भारत - भेट ।

[१६३]

काम, दाम, आराम कौ
सुघर समनुवै होइ,
तौ सुरपुर की कलपना
कबहूँ करै न कोइ ।

समनुवै (समन्वय) = संयोग । कलपना = कल्पना ।

[१६४]

जटित सितारन - छंद,
अंबर अंगनि झलमलत ;
चली जाति गति मंद,
सजनि-रजनि मुख-चंद-दुति ।

सितारन = (१) सलमा-सितारा, (२) तारागण । छंद = समूह ।
अंबर = (१) वस्त्र, (२) आकाश ।

[१६५]

बसि ऊँचे कुट यों सुमन !
मन इतरैए नाहिं ;
यह बिकास दिन द्वैक कौ,
मिलिहै माटी माहिं ।

कुट = (१) वृक्ष, (२) गढ़ । सुमन = (१) फूल, (२) अच्छे मनवाला । बिकास = (१) प्रस्फुटन, खिलना, (२) उन्नति, वृद्धि । मिट्टी में मिलना = (१) टूटकर धूल में गिरना, (२) नष्ट होना ।

[१६६]

कंचन होत खरो - खरो,
लहे आँच कौ संग ;
सुजनन पै त्यों साँच तें
चढ़त चौगुनौं रंग ।

[१६७]

कविता, कंचन, कामिनी
करैं कृपा की कोर,
हाथ पसारै कौन फिर
वा अनंत की ओर ?

[१९८]

फूटि-फूटि बँधि रव करैं
बीचि त्रिबेनी - बीच ;
फूटि - फूटि रोवैं मनौं
मुकत निरखि नर नीच।

फूटि-फूटि = पृथक् हो-होकर। रव = आवाज़। बीचि = लहर।

[१९९]

चहूँ पास हेरत कहा
करि - करि जाय प्रयास ?
जिय जाके साँची लगन,
पिय वाके ही पास !

जाय = वथा।

[२००]

नंद-नंद सुख-कंद कौ
मंद हँसत मुख-चंद,
नसत दंद - छलछंद - तम,
जगत जगत आनंद।

दंद = द्वंद्व।

दोहों की अकारादिक्रम-सूची

१. संस्कृत-संसार के प्रकांड पंडितों की राय

(१) संस्कृत के प्रकांड पंडित, दर्शन-शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् डॉक्टर भगवानदास एम्० एल्० ए०—जैसी सुंदर कविता, वैसी ही सुंदर वेश-भूषा अर्थात् पुस्तक की छपाई आदि।......मन में निश्चय हुआ कि अपने विषय और प्रकार के किन्हीं दोहों से कम नहीं हैं।

दोहे बहुत अच्छे हैं, बहुत अच्छे हैं। ईश्वर आपकी कविता-शक्ति को अधिकाधिक बल और विकास दे। पर यह भी चाहता हूँ कि और ऊँचे विषय और प्रकार की ओर उस शक्ति को झुका भी दें। चाहे स्वाभाविक अल्परसता के कारण, चाहे वार्धक्य से बुद्धि की स्फूर्ति के ह्रास और नीरसता की वृद्धि के कारण, मेरे मन में फिर-फिर यही बात उठती रहती है कि जैसे तुलसीदासजी ने 'रामायण' लिखकर "प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः", जिससे आज तीन सौ वर्ष से करोड़ों भारतवासियों के हृदय के अँधेरे में उजाला होता रहा है, वैसे ही कोई 'भागवत' या 'कृष्णायन' लिखता, जिससे वह उजाला और स्थायी और उज्ज्वल हो जाता, तो बहुत अच्छा होता। कई कवियों से समय-समय पर सूचना भी की, पर अब तक इस ओर किसी ने मन नहीं दिया। आपको बहुत अच्छी शक्ति मिली है, उसका ऊँचा उपयोग कीजिए।

'भागवत' लिखते बन जाय, तो करोड़ों ही पुश्त-दर-पुश्त लाभ उठावेंगे, सराहेंगे, हृदय से आशीर्वाद देंगे। देखिए, बने, तो संस्कृत भागवत में नहाइए, उसके रस में भीगिए, उसको आकंठ पीजिए, और फिर जैसे सूर्य समुद्र का पानी सोखकर बरसाता है, वैसे हिंदी-भाषा में उस रस की वर्षा कीजिए।

(२) संस्कृत और अँगरेज़ी के प्रकांड पंडित डॉक्टर गंगानाथ झा, भूतपूर्व वाइस-चांसलर प्रयाग-विश्वविद्यालय—आजकल तो बेचारी ब्रजभाषा ऐसी दुर्दशा में गिरी है कि अभिनव साहित्य-धुरंधरों द्वारा प्रायः उसकी निंदा ही सुनने में आती है। ऐसी दशा में आपने वृद्धा को हस्तावलंब देने का साहस किया, तावन्मात्रेण आपका उद्योग सराहनीय है। उस पर भी जब आपने प्रत्यक्ष दिखा दिया कि ब्रजभाषा की कविता अब भी उत्तम कोटि की—मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि सर्वोत्तम कोटि की—हो सकती है, तब तो आप धन्यवाद ही नहीं, पूर्ण आशीर्वाद के पात्र हैं।

(३) संस्कृत के वर्तमान समय में संसार के सबसे बड़े विद्वान्, जयपुर-राजसभा के प्रधान पंडित, महामहोपदेशक समीक्षाचक्रवर्ती, विद्यावाचस्पति श्रीपं० मधुसूदन शर्मा ओझा जयपुर-निवासी—यह दोहावली बिहारी-सतसई से स्पर्धा करने-वाली ही नहीं, किंतु कई भावों में उसके टक्कर लगानेवाली पैदा हो गई है। इसमें नयन-वर्णन, सामाजिक विचार और शांत रस आदि के कई दोहे बिहारी से बढ़कर हैं।

भार्गवजी की रचना के चमत्कार और मौलिकता तो प्रधान गुण हैं। आपकी कोमलकांत पदावली बड़ी ही श्लाघ्य है। इस कार्य के लिये मैं भार्गवजी को हार्दिक धन्यवाद देकर उन्हें प्रोत्साहित करता हूँ कि वह अपने इस ग्रंथ को आगे और भी बढ़ाकर हिंदी-साहित्य का उपकार करें।

(४) संस्कृत-संसार के सर्वश्रेष्ठ काव्य-मर्मज्ञ, विद्वच्छिरोमणि पूज्यपाद पं० बालकृष्णजी मिश्र महाराज, हिंदू-विश्वविद्यालय में संस्कृत-साहित्य-विभाग के माननीय अध्यक्ष—कविकुल-कुमुदकलाकरेण श्रीदुलारेलालभार्गवेण कृतां दोहावलीमाकल-

यन् अतितमानन्दमनुविन्दामि । यदस्यां रसानुसारिणा छन्दसा रीत्या कोमलतया मांसलत्वेन च मनोरमतास्पदानि विद्यन्ते पदानि । अभिधया लक्षणया चाप्रधानवृत्त्या प्रतिपादिताः पदार्थाः प्रायेण विच्छित्ति विशेषाधायि व्यङ्ग्यव्यञ्जकतया पदकदम्बकानीव गुणपदवीं नातिशेरते सत्यपि समुदये विना प्रयासमायातानां शब्दार्थालङ्कृतीनाम् । रसेषु शृङ्गार एव प्राधान्येन ध्वनेरध्वनि पथिकतां दधाति । इयं किल सहृदय-हृदयहारिणी विहारीसतसईप्रभृतिमपि पुरातनीं दोहावलीं विस्मारयति स्म, तस्मात् स्तोकतोऽपि नास्ति विप्रतिपत्तिरस्या अत्युपादेयतायाम् । किन्तु व्यङ्ग्यालङ्कारप्रकाशकं विवरणमस्यात्यन्तमावश्यकम्, येनाल्प-मतीनामपि मानसे प्रमोदः पादमादधीनेति ।

(कवि-कुल-कुमुद-कलाकर श्रीदुलारेलाल भार्गव द्वारा प्रणीत दोहावली को पढ़कर मुझे अतितम (अतुल) आनंद हुआ । इसके पद रसानुसारी छंद, रीति, कोमलता और पुष्टता से युक्त होने के कारण मनोरमता के सदन हैं । विना प्रयास आए हुए शब्दालंकारों और अर्थालंकारों के साथ-ही-साथ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना से प्रतिपादित अर्थ द्वारा वैचित्र्य-विशेष प्रदर्शित करते हुए ये पद गुण-पदवी का भी अनुसरण करते हैं । रसों में शृंगार ही प्रधानतया ध्वनि के मार्ग का अनुगामी है । सहृदय जनों का हृदय हरण करनेवाली इस 'दोहावली' ने बिहारी-सतसई आदि पुरानी दोहावलियों को भी भुला दिया है, अतः इसकी अत्यंत उपादेयता रंचक-मात्र भी अस्वीकार नहीं की जा सकती । किंतु इसके व्यंग्यालंकार का स्पष्टीकरण अत्यंत आवश्यक है, जिससे थोड़ी बुद्धिवाले भी इसका रसास्वादन कर सकें ।)

नोट—थोड़ी बुद्धिवालों के लिये भी विस्तृत टीका और व्याख्या-सहित पंचम संस्करण निकाला जा रहा है। टीका काव्य-मर्मज्ञ मिलाकारीजी ने की है ।—प्रबंधक गंगा-ग्रंथागार

२. हिंदी-विद्वानों और काव्य-मर्मज्ञों की राय

(१) व्रजभाषा-काव्य के सुप्रसिद्ध मर्मज्ञ और कविश्रेष्ठ, रत्नाकरजी के 'ऊधव-शतक' और हरिऔधजी के 'रस-कलस' के भूमिका-लेखक तथा सर्वप्रधान प्रशंसक, वर्तमान समय में व्रजभाषा-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ आलोचक विद्वद्वर पं० रमाशंकरजी शुक्ल 'रसाल' एम्० ए० (हिंदी-अध्यापक प्रयाग-विश्वविद्यालय) दुलारे-दोहावली को आधुनिक व्रजभाषा-काव्यों से ही नहीं, बिहारी-सतसई तक से ऊँची रचना बतलाते हैं। सम्मति पढ़िए—

यह तो आपको स्मरण ही होगा कि मैं आपकी 'दोहावली' को साहित्य-सदन की 'रत्नावली' कह चुका हूँ। दोहे वास्तव में अपने रंग ढंग के अप्रतिम हैं। ये बड़े ही ललित, काव्य-कला-कलित एवं ध्वनि व्यंजना-वलित हैं। जैसा अन्य विद्वानों ने इस 'दोहावली' के संबंध में कहा है, वैसा प्रत्येक काव्य-कला-कौशल-प्रेमी सहृदय व्यक्ति कहेगा। इसकी महत्ता-सत्ता दिन-प्रति-दिन बढ़ेगी। सत्काव्य के सभी लक्षण इसमें सुंदर रूप में प्राप्त होते हैं। यों तो सतसइयाँ कई हैं, किंतु आपकी यह 'दोहावली' अप्रतिम ही है। भाषा-भाव, काव्य-कौशल, सभी दृष्टि से यह सर्वथा सराहनीय है। आप इस अमर रचना से अमर हो गए। व्रजभाषा-काव्य के रसाल-वन में कल कंठ से ककुभ कूजित करनेवाला कोकिल यदि आपको इस रचना के लिये कहा जाय, तो सर्वथा उपयुक्त ही होगा। यदि इस रचना को मुक्तक-माला की मंजु मणि-मनका कहें, तो अत्युक्ति न होगी। यदि विद्वानों ने इसके दोहों को बिहारी के दोहों के समकक्ष या उनसे भी कुछ उन्नत कहा है, तो ठीक ही कहा है। व्रजभाषा-काव्य-क्षेत्र में इस

समय इस रचना तथा आपको बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त हो गया है।...

आपने व्रजभाषा-काव्य को इस रचना के रसामृत से सिंचित कर नव-जीवन प्रदान कर दिया है। अब यह कहना, जैसा कुछ लोग कहते हैं, कि अमुक कवि (सत्यनारायण, हरिश्चंद्र आदि) व्रजभाषा का अंतिम कवि था, सर्वथा भ्रममूलक और भिन्न-रुचि मात्र-सूचक ठहरता है। किं बहुना ? निष्कर्ष यह है कि इसमें वाक्य-लाघव, अर्थ-गौरव, माधुर्य एवं मंजु मार्दव सर्वत्र चारु चातुर्य-चमत्कार के साथ मिलते हैं। वर्तमान समय में प्रकाशित काव्यों में यह सबसे उत्कृष्ट है।

(२) हिंदी-संसार के सर्वश्रेष्ठ समालोचक, विद्वद्वर, कवि-श्रेष्ठ पं० रामचंद्रजी शुक्ल (प्रोफ़ेसर हिंदू-विश्वविद्यालय, बनारस)—केवल सात सौ दोहे रचकर बिहारी ने बड़े-बड़े कवियों के बीच एक विशेष स्थान प्राप्त किया। इसका कारण है उनकी वह प्रतिभा, जिसके बल से उन्होंने एक-एक दोहे के भीतर क्षण-भर में रस से स्निग्ध अथवा वैचित्र्य से चमत्कृत कर देनेवाली सामग्री प्रचुर परिमाण में भर दी है। मुक्तक के क्षेत्र में इसी प्रकार की प्रतिभा अपेक्षित होती है। राजदरबारों में मुक्तक-काव्य को बहुत प्रोत्साहन मिलता रहा है, क्योंकि किसी समादृत मंडली के मनोरंजन के लिये वह बहुत ही उपयुक्त होता है। बिहारी के पीछे कई कवियों ने उनका अनुसरण किया, पर बिहारी अपनी जगह पर अकेले ही बने रहे। हिंदी-काव्य के इस वर्तमान युग में—जिसमें नई-नई भूमियों पर नई-नई पद्धतियों की परीक्षा चल रही है—किसी को यह आशा न थी कि कोई पथिक सामान लादकर बिहारी के उस पुराने रास्ते पर चलेगा।......

बिहारी के कुछ दोहों में उक्ति-वैचित्र्य प्रधान है, और कुछ में रस-विधान। ऐसी ही दो श्रेणियों के दोहे इस 'दोहावली' में भी हैं। रसात्मक दोहों में बिहारी की-सी मधुर भाव-व्यंजना और वैचित्र्य-

प्रधान दोहों में उन्हीं का-सा चमत्कार-पूर्ण शब्द-कौशल पाया जाता है। जिस ढंग की प्रतिभा का फल बिहारी की सतसई है, उसी ढंग की प्रतिभा का फल दुलारेलालजी की यह दोहावली है, इसमें संदेह नहीं। कुछ दोहों में देश-भक्ति, अछूतोद्धार आदि की भावना का अनूठेपन के साथ समावेश करके कवि ने पुराने साँचे में नई सामग्री ढालने की अच्छी कला दिखाई है। आधुनिक काव्य-क्षेत्र में दुलारेलालजी ने व्रजभाषा-काव्य की चमत्कार-पद्धति का मानो पुनरुद्धार किया है। इसके लिये वह समस्त व्रजभाषा-काव्य-प्रेमियों के धन्यवाद के पात्र हैं।

(३) आचार्य-श्रेष्ठ बाबू श्यामसुंदरदास के सर्वश्रेष्ठ शिष्य, हिंदी के एकमात्र डी० लिट्०, हिंदी के उदीयमान लेखक और सुकाव्य-मर्मज्ञ डॉक्टर पीतांबरदत्तजी बड़थ्वाल, जिन्होंने प्राचीन हिंदी-साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन किया है—

'दोहावली' पढ़कर यत्परो नास्ति आनंद हुआ। आप अपनी रचना को 'नीरस' कैसे कहते हैं? यदि ऐसी सरस रचना को नीरस कहा जाय, तो सरस रचनाओं की गिनती में कितनी आ पावेंगी? आपकी अनोखी सूझ-बूझ, ललित शब्द-साधना, चमत्कारी संबंध-गुंफन, सब सराहनीय हैं। आप सचमुच वाग्देवी के दुलारे लाल हैं। उसने काव्य प्रणयन के भृगु-पंथ* को आपके लिये देहली का पैंड़ा बनाकर आपके भार्गवत्व की रक्षा की है। मैं राष्ट्रीय विषय ले आने-मात्र के लिये आपकी प्रशंसा नहीं करूँगा, बल्कि इस कारण कि राष्ट्रीय घटनाओं को भी आपने काव्य के साँचे में ढाल दिया है।

* भृगु-पंथ बदरीनारायण से आगे है, जिस पर चलना असंभव ही-सा है। संभवतः इस मार्ग से ही भृगु मुनि नारायण के दर्शन के लिये अपने आश्रम से उतरते होंगे।

इस रूखे ज़माने में भी आपने पुरानी रसिकता के मुग्धकर दर्शन कराए हैं। इसमें संदेह ही नहीं कि आप इस युग के 'बिहारी' हैं। वह समय दूर नहीं जान पड़ता, जब 'बिहारीलाल' कहते ही हठात् दुलारेलाल भी मुँह से निकल पड़ेगा।

(४) काव्य-कल्पद्रुम के यशस्वी लेखक, धुरंधर काव्य-मर्मज्ञ, कविवर श्रीयुत कन्हैयालालजी पोद्दार— जब कि खड़ी बोली के मेघाच्छन्न, अंधकारावृत नभोमंडल में विरल नक्षत्र की भाँति ब्रजभाषा-काव्य लुप्तप्राय हो रहा है, ऐसे समय में दुलारे-दोहावली की भाव-पूर्ण, रमणीय, चित्ताकर्षक रचना वस्तुतः चंद्रोदय के समान है।

दुलारे-दोहावली की शैली ब्रजभाषा के प्राचीन दोहा-साहित्य के अनुरूप कोमलकांत पदावली-युक्त, रस, भाव, ध्वनि, अलंकार आदि सभी काव्योचित पदार्थों से विभूषित है। कुछ दोहे तो बड़े ही चित्ता-कर्षक हैं। वे तुलनात्मक आलोचना में महाकवि बिहारीलाल के दोहों की समकक्षता उपलब्ध कर सकते हैं।

निस्संदेह दुलारे-दोहावली अपनी अनेक विशेषताओं के कारण ब्रजभाषा-साहित्य में उच्च स्थान उपलब्ध करने योग्य है।

(५) हिंदी-संसार में व्याकरण के सबसे बड़े पंडित, व्याकरणाचार्य कविवर पं० कामताप्रसादजी गुरु— आपकी रचना प्रशंसनीय है। आपके रचे हुए दोहे पढ़ने से अनेक स्थानों में बिहारीलाल का स्मरण हो आता है...। कुछ दिनों में 'दुलारे-सतसई' तैयार होकर हिंदी-साहित्य का गौरव बढ़ाएगी।...आपकी दोहावली व्याकरण की भूलों से सर्वथा मुक्त है।

(६) विद्वद्वर रायबहादुर डॉक्टर हीरालालजी डी० लिट्० सभा—इसमें संदेह नहीं कि आपके दोहे बिहारी के दोहों से स्पर्धा करते हैं।

(७) हिंदी के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत सुधींद्रजी वर्मा एम्० ए०, एल्-एल्० बी०—वास्तव में बिहारी को मात देकर आपने अपना 'अभिनव-बिहारी' नाम सार्थक किया है। एक-एक दोहा पद-लालित्य, अर्थ-गौरव तथा रचना-सौष्ठव का उत्तम उदाहरण है। प्राचीन कवियों की मौलिक कविता-शैली पर आधुनिक विज्ञान, समाज-शास्त्र, राजनीति, देश-दशा तथा साहित्यिक आदर्शों को लेकर आपने वर्तमान हिंदी-काव्य का जो पथ-प्रदर्शन किया है, उसके लिये हिंदी-साहित्य का आगामी युग आपका अत्यंत आभारी होगा। वास्तव में आपका स्थान इस युग में न केवल सर्वश्रेष्ठ पुस्तक-प्रकाशक, सफल संपादक तथा उत्तम कलाकार की दृष्टि से ही, अपितु एक युग-प्रवर्तक महाकवि की दृष्टि से भी सर्वोपरि रहेगा।

(८) एक सुप्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ—इस सांगोपांग, सचित्र, कला-कौशल-पूर्ण प्रकाशन के लिये आपको बधाई है। पुस्तक की भूमिका बड़ी पांडित्य-पूर्ण है। उसमें साहित्य-शास्त्र के प्रधान तत्त्वों तथा ब्रजभाषा के महत्त्व का बड़े सुंदर रूप से दिग्दर्शन कराया गया है।

भाव-गांभीर्य और अर्थ-व्यंजकता के लिये दोहे-जैसे छोटे छंद ने जो प्रसिद्धि पाई है, उसे आपने पूर्णतया स्थापित रक्खा है। आपने यद्यपि प्राचीन परंपरा का अनुकरण किया है, तथापि उसमें एक सुखद नवीनता उत्पन्न कर दी है। बाजी उपमाएँ कम-से-कम मेरे लिये बहुत नवीन और उपयुक्त प्रतीत होती हैं। आपने जो नई लगन की अमर-बेलि से उपमा दी है, वह बड़ी सुंदर है। अमरबेलि स्वयं बढ़ती है, और जिसके आश्रय रहती है, उसको सुखा देती है। यही हाल प्रेम की लगन का है। वह स्वयं बढ़ती रहती है, किंतु जिसमें लगन पैदा होती है, वह सूखती या सूखता जाता है। अमरबेलि के जड़ नहीं होती है, प्रेम की भी कोई जड़ नहीं है, तब भी उसकी बेलि हरियाती

है। कालों की बुराई तो सूरदासजी ने ख़ूब की है, और उन्होंने भ्रमर, कोयल और काक, सबको एक चटसार के बतला दिया है--

सखी री! स्याम कहा हित जानै;
सूरदास सर्बस जो दीजै, कारो कृतहिन मानै।

यद्यपि सूरदासजी के पद का लालित्य तथा उसकी मीठी कसक अनुकरण से परे है, तथापि आपने काले की कृतघ्नता का वैज्ञानिक कारण देकर उसमें एक नवीनता उत्पन्न कर दी है—

लै सबको उर-रंग सोखत, लौटावत नहीं;
कपटी, कान्ह, त्रिभंग, कारे तुम तातैं भए।

कुछ सीधे-सादे दोहे बहुत सुंदर लगते हैं—

पागल कौं सिच्छा कहा? साधू कौ तरवार?
कहा अंध कौं आरसो? त्यागी कौ घर-बार?

✿ ✿ ✿

मिलत न भोजन, नगन तन, मन मलीन, पथ-बासु;
निर्धनता साकार लखि ढारत करुना आँसु।

बड़ा सुंदर चित्र है। वर्तमान नृपतियों का भी आपने अच्छा चित्र खींचा है। अछूतोद्धार, गांधी-महिमा आदि सामयिक विषय भी हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपकी काव्य-प्रतिभा दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती रहे, और उसके द्वारा ब्रजभाषा की बेलि लहलहाती रहे।

(६) सुप्रसिद्ध लेखक और कवि पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी—आपके दोहों में काव्य के सर्वोत्कृष्ट गुण मौजूद हैं। मुक्तक काव्य वर्तमान समय में बहुत ही कम हिंदी-कवियों ने लिखने का साहस किया है, और जिन लोगों ने लिखा है, उनमें आपकी रचना मुझे तो भाई, बहुत सुंदर जँची है। क्योंकि अन्य लोगों की रचना

में ऐसे अर्थ-गांभीर्य, भाव-सौंदर्य और काव्यालंकार मुझे दिखाई नहीं दिए।...

आपके कई दोहे बिहारी से श्रेष्ठ ज़रूर उतरेंगे। और, बिहारी के दोहों में जो कहीं-कहीं अश्लीलता का दोष लगाया जाता है, सो आपके दोहों में कहीं नहीं है। आपकी सुरुचि, प्रतिभा, विदग्धता, रचना-चातुरी और ब्रजभाषा पर आपका इतना अधिकार देखकर कौतूहल होता है।

हिं० सा० सम्मेलन के पद्य-संग्रह में आपकी दोहावली से कुछ दोहे मैं रखवा रहा हूँ।

(१०) पंजाब के प्रसिद्ध विद्वान्, स्त्री-शिक्षा के स्तंभ तथा कन्या-महाविद्यालय के संस्थापक लाला देवराज—मैं समझता था, अब ब्रजभाषा में वैसी रस-भरी रचना नहीं हो सकती, पर आपकी दोहावली को देखकर मैं कुछ और ही समझने लगा हूँ। क्या आपके रूप में बिहारी ने अवतार तो नहीं ले लिया? 'दुलारेलाल' और 'बिहारीलाल' नाम बहुत मिलते हैं। काम में भी सादृश्य है। नामों के अक्षर और मात्राएँ भी समान। आप बिहारी के आधुनिक संस्करण तो नहीं? दोहे सर्वथा अच्छे हैं। दोहावली क्या सतसई में परिणत होगी? हो!

(११) हिंदी की प्रसिद्ध लेखिका कुमारी अमृतलता स्नातिका, प्रभाकर—मैं 'दुलारे-दोहावली' की कितने दिनों से प्रशंसा सुनकर देखने को लालायित हो रही थी। मेरे अहोभाग्य हैं कि मुझे भी इस पुस्तिका का पीयूष पान करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसके एक-एक पद्य में अलंकारों की झड़ी तथा ब्रजभाषा का सौष्ठव निहारकर श्रीभार्गवजी की अलौकिक कृति पर मन गद्गद हो जाता है। मैं तो समझ रही थी कि कवि बिहारीलाल के साथ ही ब्रजभाषा

की कविता लुप्त हो गई। पर मेरा मनोभाव ही ग़लत निकला। दुलारे-दोहावली के ६६, ६७ नंबर के दोहे बिहारी से भी भावों में कहीं अधिक बढ़े-चढ़े हैं। मैं इस कविता-कानन के मधुकर की काव्य-कुशलता पर उन्हें हार्दिक बधाई देती हूँ।

(१२) पंजाब के सर्वश्रेष्ठ लेखक श्रीयुत संतरामजी बी० ए०—मित्र, आपने तो सचमुच कमाल कर दिया। मैं नहीं समझता था, आप ऐसे अच्छे दोहे लिख सकते हैं। मैं न तो कवि हूँ, और न काव्य-मर्मज्ञ, केवल मनोरंजन के लिये कभी-कभी कविता का रसास्वादन कर लिया करता हूँ। आपकी दोहावली पढ़कर मुझे बड़ा ही आनंद आया। कोई-कोई दोहा तो इतना अच्छा है कि पढ़ते ही अनायास 'वाह-वाह' निकल पड़ती है। पुराने कवियों के दोहों में जो-जो उत्तम गुण माने जाते हैं, वे सब आपके दोहों में मिलते हैं। अब यह कहना कठिन है कि केवल प्राचीन कवि ही अच्छे दोहे लिख गए हैं, नवीन कवि वैसे नहीं लिख सकते। मेरी स्त्री ने भी आपकी दोहावली को बहुत पसंद किया है।

(१३) प्रोफ़ेसर दीनदयाल गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी० (हिंदी-अध्यापक लखनऊ-विश्वविद्यालय)—उक्ति-वैचित्र्य, व्यंग्य और कल्पना की उड़ान में अनेक दोहे यथार्थ में बिहारी के दोहों से बहस करते हैं। उनमें यथेष्ट माधुर्य है। उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष, यमक, अनुप्रास आदि चमत्कार-पूर्ण सूक्तियों की छटा तो समस्त ग्रंथ में देखने को मिलती है। . .. कलात्मकता और दिल को ख़ुश करने की 'ख़्यालबाज़ी' में दोहावली का कवि कहीं-कहीं उर्दू के रँगीले शायरों से भी बाज़ी मार रहा है। रसीले भावों के शब्द-चित्रों को देख तबियत फड़क उठती है, और दिल 'वाह-वाह !' कहकर कवि के मन-उदधि से उड़ी हुई 'भाव-भाप' में

भीग जाता है। इस सराहनीय कृति के लिये श्रीदुलारेलालजी को बधाई है। आशा है, हिंदी-काव्य-मर्मज्ञ 'दोहावली' के भावों को समझकर उसका उचित आदर करेंगे।

(१४) ओयल-नरेश श्रीमान् युवराज दत्तसिंह—श्रीपं० दुलारेलालजी की अनुपम तथा सर्वश्रेष्ठ रचना 'दुलारे-दोहावली' को पढ़कर मुझे पहले तो विश्वास नहीं आया कि आधुनिक कवि भी ब्रजभाषा की ऐसी रचनाएँ कर सकते हैं। यह ब्रजभाषा की अत्यंत सुंदर रचना है। इतने मधुर भाव तथा ऐसे अच्छे अनुप्रास तो कदाचित् ही कहीं और मिलें।

(१५) प्रसिद्ध उपन्यास और कहानी-लेखक पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक—बिहारी के पश्चात् ब्रजभाषा में दोहे लिखने का यह आपका प्रयत्न बहुत सफल रहा। वैसे तो सभी दोहों में कुछ-न-कुछ अनोखापन है, परंतु कुछ दोहे तो वास्तव में बिहारी से भी बाज़ी मार ले गए हैं।

(१६) प्रोफ़ेसर अयोध्यानाथजी शर्मा एम्० ए० (हिंदी)—आपको इस युग का बिहारी कहना चाहिए। कहीं-कहीं पर तो आपके दोहे बिहारी के कुछ दोहों से भी श्रेष्ठ हो जाते हैं।

(१७) विद्वद्वर प्रोफ़ेसर विद्याभास्करजी शुक्ल एम्० एस्-सी०, साहित्यरत्न, वनस्पति-विज्ञान-अध्यापक, नागपुर-विश्वविद्यालय—दुलारे-दोहावली को आद्योपांत पढ़कर मैं यही कहूँगा कि यह अपने ढंग की एक अनोखी रचना है। दोहों की रोचकता, उनके चुभते हुए भाव और उनका सुंदर शब्द-विन्यास, उनकी पद-योजना तथा उनका प्रवाह देखकर तो कोई भी यह कह उठेगा कि ये दोहे बिहारीजी के दोहों से कहीं अच्छे हैं, परंतु सबसे अनोखी बात जो मुझे इस रोचक रचना में पसंद आई, वह यह थी

कि इसमें कितने दोहे ऐसे हैं, जिनमें उच्च कोटि के विज्ञान की झलक है। ये साइंटिफ़िक दोहे लेखक की विज्ञान की योग्यता पर झलक डालते हैं। मुझे तो आश्चर्य है कि इतनी थोड़ी अवस्था में ही एक श्रीदुलारेलालजी में कितनी बातें हैं! उच्च कोटि के संपादक, लेखक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस आदि के एकमात्र संचालक होते हुए भी एक धुरंधर कवि और उस पर भी विज्ञान की ऐसी योग्यता! मुझे तो इस रूप में साइंटिफ़िक रचनाएँ पहली ही बार हिंदी-संसार में दिखाई दी हैं। मैंने आपके कुछ अप्रकाशित दोहे भी सुने हैं, और कितनों में ही विज्ञान के विविध उच्च कोटि के विषयों का सार पाया है।

(१८) हिंदी के सुप्रसिद्ध समालोचक, विद्वद्वर डॉक्टर हेमचंद्र जोशी – आपकी दोहावली चमत्कार-पूर्ण है। इस समय जब कि हिंदी-साहित्य के ऊपर रहस्य या छायावाद के घनघमंड बादल अपने अनर्थकारी अंधकार की छाया फैलाकर कविता-प्रसाद और रसवती वाक्यावली को लोप करने का सतत प्रयत्न कर रहे हैं, आपकी ब्रजभाषा की ललित, कांत पदावली रस की धार बहाने में समर्थ हुई है। यह देखकर मुझे हर्ष हुआ कि इस विषय पर हिंदी के साहित्यज्ञ एकमत हैं।

(१९) विद्वद्वर प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव एम्० एस-सी०—आपके अनेक दोहे, प्रायः वे सभी, जिनमें आपने वैज्ञानिक उपमाएँ दी हैं, और कुछ अन्य भी, ऐसे हैं कि बिहारी और मतिराम को मात करते हैं।

लै सबको उर-ंग, सोखत, लौटावत नहीं;
कपटी, कान्ह, त्रिभंग, कारे तुम तातें भए।

यह दोहा वही लिख सकता है, जो प्रकाश-विज्ञान का मर्मज्ञ हो। इससे आगे का दोहा भी इसी प्रकार का है। नं० ६६ के दोहे में जो हीरे के गुणों की ओर इशारा किया है, वह भी साधारण साहित्य-कवि के लिये कठिन है। भूकंप और ज्वालामुखी का संबंध भी नं० ८८ के दोहे में बड़ी चतुराई से बताया है।

नं० ८६ में रहट की, ८९ में कुरंड की, १०१ में ज्वार-भाटे की, ११८ में शून्य की, बिजली-घर (Electric power house) की १२० में, annealing की १२४ में, २६ में चकमक और ईस्पात की, ३४ में वायुयान की, ६७ में अंधबिंदु की, हीरे की ६८ में, आतिशी काँच की ८२ में जो उपमाएँ दी गई हैं, वे आपका वैज्ञानिक अनुभव पूर्णतया बतला रही हैं।

शृंगार-रस के दोहों में भी आपने अद्वितीय प्रतिभा दिखाई है। देश-प्रेम, देशोद्धार, समाज-सुधार, राजनीति, वेदांत, भक्ति, वीर आदि रस तथा समकालीन इतिहास (Contemporary History) पर भी आपने अनुपम दोहे लिखे हैं।

(२०) इंदौर में ब्रजभाषा के सबसे बड़े ज्ञाता प्रोफ़ेसर श्रीनिवासजी चतुर्वेदी एम्० ए० (संस्कृत-हिंदी-अध्यापक होलकर-कॉलेज, इंदौर)—आपने हिंदी-भाषा की जो सामयिक और वास्तविक सेवाएँ की हैं, वे सर्वथा अभिनंदनीय एवं सराहनीय हैं। गंगा-पुस्तकमाला तथा माधुरी व सुधा प्रचलित करके हिंदी-क्षेत्र में साहित्य-सेवियों, उत्तम रचनाओं, सुलेखकों को उत्तेजन देने का जो महत्त्व-पूर्ण एवं आदर्श कार्य किया है, वह हिंदी-प्रेमियों के लिये गौरव एवं आदर का विषय है। भाषा में साहित्यिक क्षेत्र निर्माण करने का सुयश आपको अवश्य प्राप्त हुआ है, वह होना ही चाहिए था। आपकी ये अमूल्य सेवाएँ भाषा के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं।

'दुलारे-दोहावली' तैयार करके आपने आदर्श कवित्व-कला-मर्मज्ञता तथा भाव-सरसता का पूर्ण परिचय दिया है।

इस युग में भी ब्रजभाषा की इतनी सुंदर और उत्कृष्ट रचना हो सकती है, यह देखकर मुझे परम प्रसन्नता होती है। निश्चय ही आपकी यह रचना ब्रजभाषा-काव्य का गौरव बढ़ानेवाली है। इसमें प्रायः सभी रसों का सुंदर समावेश किया गया है। लालित्य तथा प्रसाद-गुण प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं। भावों की धारा नैसर्गिक रूप में प्रवाहित हो रही है। दोहा-सदृश छोटे-से छंद में गंभीर भावों का सुरुचि-पूर्ण दिग्दर्शन कराना कवि की प्रतिभा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। कल्पनाएँ स्थान-स्थान पर अत्युत्तम तथा मनोमोहक हैं। इस उत्तम काव्य का अवलोकन करके बिहारी तथा सत्यनारायण की पुनीत स्मृति सहसा उपस्थित हो जाती है। भाषा पर आपका आधिपत्य देखकर परम हर्ष होता है।

३. हिंदी-कवियों की राय

(१) सबसे वृद्ध काव्य-मर्मज्ञ, छंद-शास्त्र के अद्वितीय विद्वान्, कविश्रेष्ठ पं० जगन्नाथप्रसादजी 'भानु' लिखते हैं—

"कवि-सम्राट् श्रीदुलारेलाल भार्गव

सुहृद्वर,

'दुलारे-दोहावली' की प्रति मिली। अनेक धन्यवाद। पुस्तक पढ़कर चित्त अत्यंत प्रसन्न हो गया। इसके पहले भी मैं माधुरी या सुधा में प्रकाशित चित्रों के नीचे छपे आपके बनाए हुए दोहों को पढ़कर आपकी प्रशंसा किया करता था, और मित्रों से कहा करता था कि इन भाव-पूर्ण दोहों को पढ़कर बिहारी कवि का स्मरण हो आता है। सचमुच में जैसे वह कोमल पर मार्मिक, ललित पर अनूठे, सरस और सजीव दोहों के लिखने में समर्थ और सिद्ध-

हस्त थे, जान पड़ता है, वे ही सब बातें माता सरस्वती ने आपकी लेखनी में भी भर दी हैं। ब्रजभाषा के वर्तमान काल के कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि मानता हूँ।

आपने यह बहुत अच्छा किया, जो इन सब दोहों को क्रमबद्ध करके उनका संग्रह, सचित्र और सजावट के साथ, प्रकाशित कर डाला। यह अब हिंदी-साहित्य की बहुमूल्य चीज़ हो गया है।"

(२) महाकवि शंकरजी—महाकवि पं० नाथूराम शंकरजी शर्मा ने, सन् १९२२ में, माधुरी में प्रकाशित दुलारे-दोहावली के प्रारंभिक और अपेक्षाकृत साधारण दोहों पर ही मुग्ध होकर बिना जाने ही कि ये श्रीदुलारेलाल के लिखे हैं, उन्हें लिखा था—"माधुरी बड़े ठाट-बाट से निकली है। परमात्मा उसे उत्तरोत्तर उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ावे। .... दोहा लाजवाब निकला है। दोहा के प्रणेता की सेवा में मेरा प्रणाम पहुँचे। ..... कविता है, तो यह है!"

नोट—सुप्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ, संपादक-प्रवर, कविवर पं० हरिशंकर शर्मा का कथन यह है कि पूज्य पिताजी शंकरजी महाराज दुलारे-दोहावली के दोहों की सदा प्रशंसा करते रहते थे, और 'माधुरी' में प्रकाशित कुछ दोहों पर उन्होंने "बहुत ख़ूब" लिख रक्खा था!

(३) महाकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त—आज लोग भले ही उन पर टीका-टिप्पणी करें, परंतु हिंदी-काव्य के दोहा-साहित्य के इतिहास में प्राचीनों के साथ उनका भी एक विशेष स्थान होगा ही। एक मित्र के नाते उसके लिये मैं उन्हें सहर्ष बधाई देता हूँ।

(४) महाकवि श्रीसियारामशरणजी गुप्त—मुझे तो आपके दोहे बहुत पसंद हैं। आपने ब्रजभाषा की महादेवी के कंठ में दोहावली का जो यह आभूषण पहनाया है, उसका सोना तो प्राचीन है, अतएव उसे खरा मानना ही पड़ेगा; किंतु उसमें निर्माण-रुचि की

नवीनता भी यथेष्ट परिमाण में है। इस संबंध में आपको अपूर्व सफलता मिली है।

(५) छायावाद के श्रेष्ठ महाकवि पं० सुमित्रानंदनजी पंत—प्रायः प्रत्येक दोहा आपने मौलिक प्रतिभा, कोमल पद-विन्यास एवं काव्योचित भाव-विलास से सजाया है। शृंगार तथा प्रकृति-प्रधान दोहे मुझे अधिक पसंद हैं। तुलनात्मक दृष्टि से मध्यकालीन महारथियों की रचनाओं से वे होड़ लगाते हैं।

(६) हिंदी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार, सुप्रसिद्ध समालोचक, विद्वद्वर रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० पं० सुमित्रानंदनजी पंत ने दुलारे दोहावली के संबंध में जो कुछ लिखा है, उससे मैं अक्षरशः सहमत हूँ।

(७) कवि-सम्राट् पंडित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'—

काके दृग बिलसे नहीं लहे सु मुकुता हार,
देखि दुलारेलाल-कृत दोहावली-दुलार?
बनी सरस दोहावली, बरसि सुधा-रस-धार,
कौन दुलारेलाल के दिल कौ लहे दुलार?

(८) कविवर प्रोफ़ेसर रामदास गौड़ एम्० ए०—२०० दोहों तक आँखें पहुँच गईं। बढ़े चलिए। ७०० पूरे कीजिए। बड़े बाँके दोहे हैं। राजनीतिक दोहे महत्त्व के हैं। रचनाकाल के अंतःसाक्षी भी हैं। मुझे तो आपके कई अनुपम दोहे बिहारी से भी चोखे लगते हैं। आजकल के विषयों का समावेश करके आपने इन्हें समयानुकूल बना दिया है। रत्नाकरजी ऐसा नहीं कर सके।

(९) सरस्वती-संपादक कविवर ठाकुर श्रीनाथसिंहजी—आपका 'स्फुर-बाग़' दोहा बिहारी के दोहों से बाज़ी मार ले गया है!

थोड़े शब्दों में बड़ी बात व्यक्त करने के लिये बिहारी प्रसिद्ध हैं। पर, जान पड़ता है, आप उनकी इस प्रसिद्धि पर चोट करेंगे।... मैं दोहों का विरोधी था ..., पर आपके दोहों ने इस दिशा में भी मेरी रुचि उत्पन्न कर दी है।...मैं सप्रमाण सिद्ध कर सकता हूँ कि आपकी दोहावली बिहारी-सतसई से बाज़ी मार ले गई है।

(१०) कविश्रेष्ठ हितैषीजी – आपने दोहे लिखकर वह कमाल दिखलाया कि मैं आश्चर्य-चकित रह गया। मैं स्पष्ट कहने में संकोच न करूँगा कि आपने बिहारी से लेकर अब तक के प्रायः सभी कवियों को पीछे छोड़ दिया। आचार्य द्विवेदीजी के सम्मान के हेतु हुए प्रयाग के द्विवेदी-मेला में राजा साहब कालाकाँकर के और मेरे अनुरोध पर तुरंत रचना करके तो आपने मुझे मुग्ध ही कर लिया था। तब मैंने ही नहीं, वरन् उपस्थित सहस्रों नर-नारियों ने मुक्त कंठ से आपकी अपूर्व कवित्व-शक्ति की प्रशंसा की थी। आपकी यह दोहावली वर्तमान काल में ब्रजभाषा की अद्वितीय वस्तु है।

(११) आचार्य रामकुमार वर्मा एम्० ए०, हिंदी-विभाग, इलाहाबाद-युनिवर्सिटी —मुझे यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि दोहावली में कल्पना और अनुभूति का जितना सजीव चित्रण हुआ है, उतना आधुनिक ब्रजभाषा के किसी भी ग्रंथ में नहीं। यह आधुनिक ब्रजभाषा में सर्वोत्कृष्ट रचना है। विशेषता तो यह है कि इस दोहावली में ब्रजभाषा ने नवीन युग की भावना उतने ही सौंदर्य से प्रदर्शित की है, जितने सौंदर्य से राधाकृष्ण के शृंगार की भावना। इसमें संदेह नहीं कि आपकी यह कृति अमर रहेगी। .....ब्रजभाषा में लिखनेवाले आधुनिक कवियों के लिये दुलारे-दोहावली आदर्श रचना होगी।

(१२) कविवर श्रीयुत गुरुभक्तसिंहजी 'भक्त' बी० ए०, एल्-एल्० बी०—खड़ी बोली के इस युग में ब्रजभाषा में कविता लिखकर आपने ब्रजभाषा के स्वर्णयुग के कवियों से सफलता-पूर्वक टक्कर ली है। आपके दोहे पद-लालित्य, अर्थ-गौरव, शब्द-सौष्ठव एवं माधुर्य में कहीं तो महाकवि बिहारीलाल के समकक्ष और कहीं बढ़कर ठहरते हैं। इस दोहावली को देखकर क्या अब भी कोई कह सकता है कि ब्रजभाषा Dead Language हो चली है।

सहज बिमल सित किरण-सी पदावली प्रतिएक —
बुध-बिचार घन लहत ही प्रगटत रंग अनेक।
कण - से लघु यद्यपि लगैं दोहे सरस अखंड,
विश्लेषण के होत ही प्रगटैं शक्ति प्रचंड।

(१३) कविवर 'बिस्मिल' इलाहाबादी—

बिहारी-सतसई से कुछ नहीं कम —
दुलारेलाल की दोहावली भी।

(१४) कविराज पं० गयाप्रसाद शास्त्री, राजवैद्य, साहित्याचार्य, आयुर्वेद-वाचस्पति, भिषग्रत्न 'श्रीहरि'—

ऊख मैं, पियूख मैं न पाई सुर रूखहू मैं,
दाख की न साख त्यों सिताहू सकुचाई है;
सीठी भई मीठी बर अधर-सुधा हू जहाँ,
मंद परी कंद की अमंद मधुराई है।
पीते रहे ही ते पर रीते अनरीते रहे,
जानि न परै धौं यह कौन-सी मिठाई है;
'श्रीहरि' अनोखी, चोखी उक्ति-जुक्ति भाव-भरी,
कोई कल कामिनी कि कबि-कबिताई है।

(१५) ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि श्रीश्यामनाथजी 'द्विजश्याम'—

सुधुनि, सुलच्छन, गुन-भरे, भूषन-धरे, रसाल,
शत दोहा रचि सत सुयश लह्यो दुलारेलाल।

(१६) ब्रजभाषा के कविवर पं० उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' एम्० ए०—I am extremely delighted with its freshness, strength, originality and in my opinion it is a work of permanent interest, wonderful power and marked genius. You have originated a new style of your own in Brija Bhasha and I consider you to be the Poet of the foremost rank.

(१७) कविवर श्रीलक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण' बी० ए० -- आधुनिक ब्रजभाषा की पुस्तकों में इस दोहावली का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। सभी दोहे सुंदर और सुललित हैं। विषय निर्वाह, पद-योजना, ध्वनि और अलंकार के लक्षणों से युक्त इस रचना का हिंदी-संसार यथेष्ट आदर करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। आपकी भाषा में सरसता है, प्रवाह है, और एक अनूठापन है, जो प्राचीन कवियों की रचनाओं में भी पूर्ण रूप से नहीं मिलता। बिहारी और मतिराम के दोहों से भी आपके कुछ दोहे, भाव और सरसता की दृष्टि से, बहुत बढ़ गए हैं। चमत्कार और मौलिकता आपकी रचनाओं का प्रधान गुण है! आशा है, आपकी दोहावली ब्रजभाषा-साहित्य के भांडार का एक अति उज्ज्वल रत्न बनेगी।

(१८) ब्रजभाषा के कविश्रेष्ठ पं० शिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस'—रूपकालंकारादि से दोहे पूर्ण हैं। आपने बिहारी के साथ कविता की समानांतर-रेखा खींची है। संकुचित स्थानों में, जहाँ कहीं आप बिहारी से मिलते देख पड़ते हैं, वहाँ भी आपने भिन्न भावांकन

के साथ पृथक् ही रहने का अच्छा प्रयास किया है। आपके दोहों में भाव बढ़िया हैं, और वे अनुप्रास तथा यमक से जगमगा रहे हैं। दोहा की सकरी गली में साधारणतः सिकुड़कर चलना पड़ता है, पर वहाँ भी आपने कविता को भूषित वेश में निकाला है।

(१६) कविवर पं० हरिशंकरजी शर्मा—कितने ही दोहे तो बड़े ग़ज़ब के हैं। उनमें चमत्कार-पूर्ण प्रतिभा और कवित्वमय मौलिकता है। खड़ी बोली के आधुनिक युग में, ब्रजभाषा की ऐसी रुचिर रचना, वास्तव में, अभिनंदनीय है। दृढ़ विश्वास है कि विश्व-विश्रुत ब्रजमाधुरी आपको, इस सुधास्पंदिनी कोमलकांत पदावली के लिये, अपना अमोघ आशीर्वाद प्रदान करेगी।

४. अँगरेज़ी-विद्वानों की राय

(१) विद्वद्वर प्रोफ़ेसर जीवनशंकरजी याज्ञिक एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, अँगरेज़ी-अध्यापक काशी-विश्वविद्यालय—'दुलारे-दोहावली' एक अनोखी चीज़ है। कोई माई का लाल ब्रज-भाषा की क्षीण और उपेक्षित शक्ति को फिर से चमका देगा, ऐसी आशा नहीं रह गई थी। श्रीभार्गवजी छिपे रुस्तम निकले। सफल संपादक से बढ़कर कवि निकले। और, वह भी कैसे कि उनकी तुलना बिहारी से की जाती है! धन्य उनका सफल प्रयास और धन्य उनकी अमर कृति !!

भविष्य में इस युग का नाम 'दोहावली' से निश्चित हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। इस अनमोल हार को पाकर आज मातृभाषा गौरव को प्राप्त हो रही है।

'दोहावली' की चर्चा करते हुए हमको तो गीता का श्लोक याद आता है—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ;
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।

इससे अधिक क्या कहा जाय, और जो कुछ भी कहा जाय, वह ऐसे रत्न की प्रशंसा में अत्युक्ति-दोष से दूषित नहीं हो सकता। बड़े सौभाग्य से अपने जीवन में ऐसी रत्नावली देखने को मिलती है।

(२) प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा (प्रयाग-विश्वविद्यालय में अँगरेज़ी-विभाग के अध्यक्ष)—'दोहावली' पढ़कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। बहुत दिनों पर ऐसी कविता पढ़ने का अवसर मिला। बिहारी ने दोहा को ऐसे उच्च शिखर पर पहुँचा दिया था कि कवियों को उनका अनुकरण दुःसाध्य मालूम होने लगा था। आपने 'दोहावली' लिखकर यह प्रमाणित कर दिया कि इस युग में भी, ब्रजभाषा में, सभी प्रकार के भाव, सभी भाँति के विषय, गूढ़-से-गूढ़ तत्त्व, जटिल-से-जटिल समस्याएँ दोहा में सुचारु रूप से व्यक्त करने की योग्यता आपमें है।

पुस्तक जिस विलक्षण सजधज से निकली है, उसी ठाठ की कविता भी है।

(३) हिंदी के श्रेष्ठ कवि और आलोचक प्रोफ़ेसर शिवाधारजी पांडेय (अँगरेज़ी-अध्यापक प्रयाग-विश्वविद्यालय)—What I came across, however, was equal to anything of the type in our literature.

५. पत्र-पत्रिकाओं की राय

(१) हिंदी का सबसे अधिक उपकार करनेवाली संस्था

दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार-सभा का मुख-पत्र 'हिंदी-प्रचारक'— यह पुस्तक इस बात का प्रमाण है कि खड़ी बोली के इस युग में भी ब्रजभाषा का महत्त्व कम नहीं हुआ है। भाषा, भाव तथा कल्पना, सब दृष्टियों से इसके दोहे सर्वोत्कृष्ट कहे जा सकते हैं। कुछ दोहे तो ऐसे उतरे हैं कि उनको पढ़-पढ़कर भी जी नहीं भरता और फिर पढ़ने की इच्छा होती है। कई दोहे तुलना में कवि बिहारीलाल के दोहों की टक्कर के हैं, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं।

(२) हिंदी की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'चाँद' दोहावली के दोहे निस्संदेह बहुत अच्छे हैं। उनमें पद-लालित्य, अर्थ-चमत्कार, सूक्ष्म कल्पना, भाव-गंभीरता, रस और अलंकार, सभी कुछ मिलता है। इन दोहों की रचना करके कविवर श्रीदुलारेलालजी ने अपनी प्रखर एवं असाधारण कवित्व-प्रतिभा का परिचय दिया है। 'दुलारे-दोहावली' के पढ़ने से प्रायः वही आनंद मिलता है, जो 'बिहारी-सतसई' के पाठकों को प्राप्त होता है। 'दोहावली' एक मुक्तक काव्य है। बहुत-से दोहे शृंगार-रस-पूर्ण होते हुए भी अश्लीलता के दोष से सर्वथा मुक्त हैं। शृंगारात्मक दोहों के अतिरिक्त, प्रस्तुत काव्य-ग्रंथ में, धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय विषयों के आधार पर रचे हुए कुछ दोहे भी वर्तमान हैं।

इस प्रकार के उत्कृष्ट दोहे पुस्तक में भरे पड़े हैं। रूपक अलंकार का आश्रय लेकर कवि ने विविध विषयों का वर्णन बड़े चित्ताकर्षक ढंग से किया है। ब्रजभाषा का अवलंबन कर आधुनिक काल में इस प्रकार की सरलता एवं ललित रचना करके कविवर श्रीदुलारेलालजी ने वास्तव में बड़े कमाल का काम किया है।

दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार-सभा का मुख-पत्र 'हिंदी-प्रचारक'—यह पुस्तक इस बात का प्रमाण है कि खड़ी बोली के इस युग में भी ब्रजभाषा का महत्त्व कम नहीं हुआ है। भाषा, भाव तथा कल्पना, सब दृष्टियों से इसके दोहे सर्वोत्कृष्ट कहे जा सकते हैं। कुछ दोहे तो ऐसे उतरे हैं कि उनको पढ़-पढ़कर भी जी नहीं भरता और फिर पढ़ने की इच्छा होती है। कई दोहे तुलना में कवि बिहारीलाल के दोहों की टक्कर के हैं, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं।

(२) हिंदी की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'चाँद' दोहावली के दोहे निस्संदेह बहुत अच्छे हैं। उनमें पद-लालित्य, अर्थ-चमत्कार, सूक्ष्म कल्पना, भाव-गंभीरता, रस और अलंकार, सभी कुछ मिलता है। इन दोहों की रचना करके कविवर श्रीदुलारेलालजी ने अपनी प्रखर एवं असाधारण कवित्व-प्रतिभा का परिचय दिया है। 'दुलारे-दोहावली' के पढ़ने से प्रायः वही आनंद मिलता है, जो 'बिहारी-सतसई' के पाठकों को प्राप्त होता है। 'दोहावली' एक मुक्तक काव्य है। बहुत-से दोहे शृंगार-रस-पूर्ण होते हुए भी अश्लीलता के दोष से सर्वथा मुक्त हैं। शृंगारात्मक दोहों के अतिरिक्त, प्रस्तुत काव्य-ग्रंथ में, धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय विषयों के आधार पर रचे हुए कुछ दोहे भी वर्तमान हैं।

इस प्रकार के उत्कृष्ट दोहे पुस्तक में भरे पड़े हैं। रूपक अलंकार का आश्रय लेकर कवि ने विविध विषयों का वर्णन बड़े चित्ताकर्षक ढंग से किया है। ब्रजभाषा का अवलंबन कर आधुनिक काल में इस प्रकार की सरलता एवं ललित रचना करके कविवर श्रीदुलारेलालजी ने वास्तव में बड़े कमाल का काम किया है।